मूल ग्रन्थ ग्रन्थकर्त्ता का वक्तव्य।

संसार में प्रत्येक मनुष्य अपने ही एक पृथक् मानसिक जगत् में निवास करता है। जो कुछ सुख प्राप्त है वह सब उसी के मन का उत्पन्न किया हुआ है और उसी के विचारों पर निर्भर है। इस जगत में जो अनेक दुःखों और पापों का कूप बन रहा है और जिसमें प्रायः अधिकांश मनुष्य पड़े हुए हैं। एक दूसरा जगत है जो सुखों और सद्गुणों से परिपूर्ण है और जिसमें पूर्ण ज्ञानी और विशुद्ध आत्माएं वास करती हैं, परन्तु इस जगत में वे लोग प्रवेश नहीं कर सकते जो रात दिन विषय वासनाओं में लिप्त रहते हैं और इन्द्रिय जनित सुखों के इच्छुक बने रहते हैं। इसका द्वार केवल उन्हीं लोगों के लिये खुला हुआ है जो अपने मन को अपने वश में कर सकते हैं और धर्म और सदाचार के नियमों का पालन करते हैं और जिन्होंने अपने जीवन में पूर्ण विजय प्राप्त करली है। ऐसे दिव्य जीवन को प्राप्त करना यद्यपि कठिन है, परन्तु असम्भव नहीं है। यदि मनुष्य चाहे तो इसे बहुत शीघ्र प्राप्त कर सकता है। मनुष्य उसी समय तक दुःख कूप में पड़ा है और शोक और पश्चात्ताप करता है जब तक वह अपने मन को नीच, तुच्छ, घृणित, और स्वार्थ युक्त विचारों से मलिन रखता है। ज्यों ही उसके मन में उच्च और निःस्वार्थ भावों का उदय होता है, वह उन्नति करता है और ईश्वरीय सुख का अनुभव करने लगता है।

जेम्स एलन.

निवेदन ।

विदेशों में श्रीयुत जेम्स एलन की पुस्तकों का कितना आदर है इसका अनुमान इससे किया जा सकता है कि वहां उनकी प्रत्येक पुस्तक की कई कई हज़ार प्रतियां बिक चुकी हैं। सौभाग्य से अंग्रेज़ीदां भारतवासी भी उनके ग्रन्थों से अब लाभ उठाने लगे हैं, परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि हिंदी में उनकी पुस्तकों का अभी तक अनुवाद बहुत कम हुआ है, जिससे हिंदी जानने वाले उनकी शिक्षाओं से वंचित रहते हैं। इसी कमी को दूर करने के लिये हमने उनकी पुस्तकों को प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है। यह सातवीं पुस्तक है।

इस पुस्तक में यह दिखलाया गया है कि जीवन को विजयी बनाने के लिये किस प्रकार मनोविकारों को दूर किया जाता है और आत्मा को विशुद्ध और पवित्र बनाया जाता है। जिन दुर्गुणों और दुर्व्यसनों के कारण हम दुःख कूप में पड़े हुए हैं, उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है और संसार का उपकार करने के लिये किस प्रकार नैतिक बल प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक स्त्री पुरुष के लिए यह पुस्तक अति उत्तम और उपयोगी है। हमें पूर्ण आशा है कि हिंदी भाषा भाषी इस पुस्तक से यथेष्ट लाभ उठावेंगे।

१७-५-१८

दयाचन्द्र गोयलीय,

लखनऊ।

विषय-सूची ।

१. विश्वास और साहस ... ... पृष्ठ १—१०

२. मनुष्यता और सत्यता ... ... ,, ११—२१

३. शक्ति और बल ... ... ,, २२—३०

४. आत्म संयम और सुख ... ... ,, ३१—३९

५. सादगी और स्वतंत्रता ... ... ,, ४०—४६

६. सद्विचार और शांति ... ... ,, ४७—५५

७. शांति और बल ... ... ,, ५६—६४

८. ज्ञान और श्रेष्ठता ... ... ,, ६५—७३

९. मनुष्य स्वामी है ... ... ,, ७४—८०

१०. ज्ञान और विजय ... ... ,, ८१—८८

विजयी जीवन ।

१. विश्वास और साहस ।

जीवन के अंधकारमय जगत में वे ही मनुष्य विजय प्राप्त करते हैं जो वीरता के साथ युद्ध करते हैं और कभी रणक्षेत्र से कायरों की भांति डरकर नहीं भागते। हम इस बात को पहिले ही कहे देते हैं कि जिससे पाठकों को इसका पूरा पूरा ज्ञान हो जाए और उन्हें इस विषय में कुछ भी शंका न रहे। हम आगे चलकर क्रमशः बतलावेंगे कि आचार और व्यवहार में ऐसे कौन कौन से गुण हैं कि जिनसे हमारा जीवन शांत, सुदृढ़ और उत्कृष्ट बन सकता है।

सत्य के सन्मुख खड़ा होना, नाना प्रकार के दुःखों और कष्टों के सहन करने के पश्चात् ज्ञान और सुख को प्राप्त करना और अन्त में परास्त और अपमानित न होना किंतु अपने अंतरंग के प्रत्येक शत्रु पर विजय प्राप्त करना ही मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। यही उसका अभीष्ट और अंतिम उद्देश्य है। संसार में जितने बड़े बड़े ऋषि, मुनि और तीर्थंकर हुए हैं उन सबने भी यही बतलाया है।

यद्यपि वर्तमान में मानव समाज की ऐसी दशा है कि बहुत

ही थोड़े लोगों ने इस अभीष्ट को प्राप्त किया है तथापि यह बात निश्चित है कि अंत में एक न एक दिन सभी इसको प्राप्त करेंगे। इसके अतिरिक्त भूत काल में ऐसे बहुत से महा पुरुष हो चुके हैं कि जिन्होंने इसको प्राप्त किया है और जिनकी संख्या प्रत्येक युग में बढ़ती ही जाती है। अभी तक हम लोग जीवन-शाला में विद्यार्थी के सदृश हैं। बहुत से लोग विद्यार्थी अवस्था में ही काल के गाल में पड़जाते हैं, किंतु कुछ लोग ऐसे भी हैं, कि जो इसी जीवन में दृढ़ प्रतिज्ञा और दुःख, अंधकार और अज्ञानता से घोर संग्राम करने के कारण, जीवन का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करलेते हैं हैं और आनंद के साथ विद्यार्थी अवस्था से पार होजाते हैं। इस दुनियां में आदमी सदा विद्यार्थी रहने के लिए ही नहीं आया है कि वह अपनी मूर्खता, उद्दंडता और भूलों के कारण पिटता ही रहे। वह जब चाहे मन लगाकर अपने जीवन के पाठों को सीख सकता है। और पूर्ण विद्वान् और बुद्धिमान होकर ज्ञान और शांति का आनंद लूट सकता है और दुःख और अज्ञानता से मुक्त हो सकता है।

जीवन में बहुत दुःख हैं और उनकी जड़ें बहुत गहरी हैं परन्तु उनका पता लगाया जा सकता है और वे उखाड़ी जा सकती हैं। जब तक मनुष्य अपनी कषायों, वासनाओं और मनोविकारों पर विजय प्राप्त नहीं कर लेता है, तब तक उनसे उसको बहुत कष्ट पहुंचता रहता है, परंतु वह उनको शमन कर सकता है, मंद कर सकता है और बुद्धिपूर्वक उनसे काम ले सकता है और जीवन के उत्तम उद्देश्यों की उनके द्वारा पूर्ति कर सकता है। जीवन में बड़ी बड़ी कठिनाइयां उपस्थित

होती हैं। घोर संग्राम करना पड़ता है फिर भी इस बात का निश्चय नहीं कि इच्छित फल की प्राप्ति होगी। कभी कभी तो बड़ा धोका होजाता है, यहां तक कि सैकड़ों स्त्री पुरुष उनके बोझ से दबकर मरजाते हैं, परंतु स्मरण रहे इन दुःखों और कष्टों का और इन कठिनाइयों का अस्तित्त्व कुछ भी नहीं है। इनका अस्तित्त्व केवल हमारे मन और आत्मा में है। हम चाहें तो उनका रूप बदल सकते हैं। संसार चक्र में कोई भी विकार सदा और सर्वदा से नहीं है। हम में अनंत शक्ति मौजूद हैं। हम अपने मनको उस नैतिक परिसीमा तक पहुंचा सकते हैं जहां विकार उसको स्पर्श भी नहीं कर सकता।

अनंत और विश्वव्यापी न्याय और नित्य भलाई पर दृढ़-विश्वास करना ही विजयी-जीवन का मार्ग है। जो मनुष्य शांत, बलवान, गम्भीर और दृढ़चित्त होना चाहता है, उसे सबसे पहिले यह बात भली भांति समझ लेनी चाहिए कि जीवन का हृदय अर्थात् अंतरंग विशुद्ध है। जो मनुष्य प्रकृति के नियमों को समझना चाहता है और मुक्ति के आनंद का उपभोग करना चाहता है उसे यह जान लेना चाहिए कि उसके जीवन में वास्तव में कोई विकार नहीं है। जो विकार दिखलाई देते हैं वे सब उसीके उत्पन्न किये हुए हैं। इसका समझना ज़रा कठिन है, कारण कि मन अशुद्ध अवस्था में अपने को अच्छा समझता है। परंतु जो लोग मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिए वस्तु स्वरूप का समझना आवश्यक है। पहिले मनुष्य को विश्वास करना चाहिये और जब तक पूर्णज्ञान और अनुभव न हो जाए, तब तक विश्वास पर ही अटल जमे रहना चाहिए।

यदि हम जीवन के दुःखों से अनुभव प्राप्त करना सीखलें तो हमारे बहुत से दुःख कम हो सकते हैं। जिस मनुष्य को विश्वास है वह ऐसा ही करता है। यदि हम अपने सब अनुभवों से लाभ उठावें और उनसे अपना चरित्र गठन करें तो हम अपने दुःखों का रूप बदल सकते है और उनका नाश भी कर सकते हैं। विवेकी पुरुष ऐसा ही करते है और वे उनसे यथेष्ठ लाभ उठाते हैं।

जिस प्रकार पहिले सूर्योदय होता है और फिर मध्याह्न होता है, उसी प्रकार पहिले विश्वास होता है और पीछे ज्ञान होता है। विश्वास के विना कोई मनुष्य वलवान और साहसी नहीं हो सकता और न वह अपने चंचल मन को स्थिर कर सकता है। जिस मनुष्य को दृढ़-विश्वास होता है वह कष्टों के आने पर तनिक भी भयभीत नहीं होता। चाहे कितनी ही विपत्तियां आएं वह कभी हताश नहीं होता। उसका मार्ग चाहे कितना ही दुर्गम और अन्धकारमय हो, परंतु उसको अपने मस्तक के ऊपर स्पष्टमार्ग दिखलाई देता है और उसके परे शांति और प्रकाश का स्थान दिखलाई देता है।

जिन मूर्खों को इस बात का विश्वास नहीं है कि अंत में भलाई की जय होगी वे बुराई का आश्रय लेते हैं। उनका ऐसा करना ठीक भी है, कारण कि जो भलाई की उन्नति नहीं करता वह बुराई की उन्नति अवश्य करता है। जो बुराई को जीवन का आधार समझता है वह उसके कडुवे फल को भी अवश्य चखता है।

जो मनुष्य जीवन समर में परास्त हो जाते हैं वे अज्ञानवश दूसरों की निन्दा करने लगते हैं। उनका ऐसा विश्वास है

और वे दूसरों को भी यही विश्वास दिलाते हैं कि यदि उनके पड़ोसी और साथी लोग उनके साथ छल कपट न करते तो वे अवश्य ही धनी, मानी और विजयी होते। जब देखो वे दूसरों से यही कहते रहते हैं कि उन्होंने हमें धोका दिया, हमारे साथ विश्वासघात किया और हमारा अपमान किया। वे समझते हैं कि संसार में केवल हम ही सच्चे और ईमानदार हैं और सब झूठे और बेईमान हैं। वे प्रायः कहा करते हैं कि यदि हम भी दूसरों की भांति स्वार्थी और मायाचारी होते तो हम भी उनकी भांति आज धनी, मानी होते। हमारी अवनति और विपत्ति का मुख्य कारण यह है कि हम जन्म से ही निःस्वार्थी पैदा हुए हैं। इस प्रकार अपनी झूठी प्रशंसा करने वाले मनुष्य भलाई बुराई में कोई पहिचान नहीं कर सकते। उन्हें भलाई और मानव-प्रकृति में विश्वास नहीं रहा है। जब वे दूसरों पर दृष्टि डालते हैं तो उनमें उन्हें केवल दोष ही दोष दिखलाई देते हैं, परन्तु जब वे अपनी ओर दृष्टि-पात करते हैं तो अपने को निष्कलंक और निर्दोषी पाते हैं, परन्तु साथ में यह भी देखते हैं कि दूसरे उन पर आघात करते और उनको हानि पहुंचाते हैं। अपने में कोई अवगुण ढूंढने की अपेक्षा वे मानव समाज में ही अवगुण देखते हैं। उन्होंने अपने हृदय का राज्य दुष्टता के दैत्य को दे रक्खा है और उसी को जीवन का स्वामी मान रक्खा है। उनको सर्वत्र इसी का साम्राज्य दिखलाई देता है। जहां पर भलाई ठोकरें खाती है और बुराई की तूती बोलती है। वे अपनी मूर्खता, अज्ञानता और निर्बलता को तो समझते नहीं हैं और व्यर्थ में अपने भाग्य को दोष देते रहते

हैं। यही कारण है कि उन्हें अपनी वर्तमान अवस्था में सदा दुःख और क्लेश उठाने पड़ते हैं।

जो मनुष्य अपने जीवन को सफल और उपयोगी बनाना चाहता है और आत्मोन्नति और विजय प्राप्त करना चाहता है, उसे चाहिए कि वह अपने हृदय से उन सब बुरी वासनाओं को निकाल डाले कि जिनसे भलाई और पवित्रता दब रही है और नीचता और अपवित्रता बढ़ रही है। जो मनुष्य झूठ, कपट और स्वार्थ को अपने जीवन में सफलता का साधन समझता है, उसे नाना प्रकार के दुःख और क्लेश उठाने पड़ते हैं। वह मनुष्य कुछ भी बल और शक्ति नहीं बढ़ा सकता और न कुछ सुख और शांति का उपभोग कर सकता है।

जो दूसरों की बराबरी करने के लिए अपने हृदय के सद्गुणों को तुच्छ और तिरस्कृत समझता है, जिसका यह विचार है कि बुराई भलाई से अधिक प्रबल है और बुरे आदमी ही इस दुनिया में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं, तो समझना चाहिए कि वह अभी बुराई में फंसा हुआ है और बुराई के कारण उसे निश्चय से परास्त और पराजित होना होगा।

तुम्हें मालूम होता है कि संसार में दुष्टता ही दुष्टता भरी हुई है, बुरे ही आदमी दुनियां में फलते फूलते हैं और अच्छे आदमी दुःख उठाते हैं और जहां देखो अनियम और अन्याय का साम्राज्य है, परन्तु यह तुम्हारा भ्रम है, तुम्हें कभी ऐसा विचार नहीं करना चाहिए। तुम अज्ञानावस्था में हो, इसी से ऐसा समझते हो। तुम्हें अभी जीवन की वास्तविकता का ज्ञान नहीं है और न तुमने अभी वस्तुओं के कार्य कारण पर

ही विचार किया है। यदि तुम शुद्ध अन्तःकरण से बुद्धिपूर्वक अपने जीवन पर विचार करो तो तुम्हें उसकी वास्तविकता का भली भांति बोध हो जायगा और फिर तुम्हें जहां पहिले बुराई मालूम देती थी, भलाई मालूम होने लगेगी। अन्याय के स्थान में न्याय और अनियम के स्थान में नियम प्रतीत होगा।

यह संसार सृष्टि है न कि प्रलय। किसी निश्चित नियम पर निर्धारित है इसीसे इसमें बुरे आदमी कभी नहीं बढ़ने पाते। इसमें सन्देह नहीं कि इस जगत में बुराई बहुत है और यही कारण है कि सदाचार की इतनी आवश्यकता है, परन्तु साथ में ही संसार में दुःख भी कम नहीं है और बुराई और दुःख में कार्य कारण का सम्बन्ध है। इसमें भी सन्देह नहीं कि संसार में भलाई है और भलाई के साथ साथ आनन्द भी है और इन दोनों में भी कार्य कारण का सम्बन्ध है।

भलाई की प्रबल शक्ति और उसके आधिपत्य में जिस मनुष्य का ऐसा दृढ़ विश्वास है कि चाहे प्रत्यक्ष मे कैसा ही अन्याय हो रहा हो और कितना ही दुःख और क्लेश उठाना पड़ता हो, फिर भी उसके विश्वास में कमी नहीं आती तो निश्चय से वह मनुष्य जीवन की कठिनाइयों और आपत्तियों को धैर्य के साथ सहन कर लेगा और फिर भय, शंका और निराशा का कोसों पता नहीं चलेगा। सम्भव है कि वह अपने समस्त उद्योगों में सफलीभूत न हो और उसको असफलता का सामना भी करना पड़े, परन्तु जैसे जैसे उसे असफलता होती है वैसे वैसे ही उसकी आकांक्षाएं बढ़ती जाती हैं और वह अधिकाधिक उन्नति करता जाता है। उसे इस कारण

असफलता होती है कि वह पहिले की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त करे। उसका जीवन कभी असफल नहीं हो सकता और न कभी होगा। सम्भव है वह अपने प्रत्येक उपाय में सफल न हो, परन्तु इस प्रकार की असफलता उसके चरित्र की निर्बल कड़ियों को तोड़ डालती है कि जिससे वह फिर अपने चरित्र का निर्माण करे और अपने जीवन को दृढ़ और बलवान बनावे।

मनुष्य के भीतर एक प्रकार का पाशविक बल भी होता है कि जिससे वह युद्धक्षेत्र में शत्रु का, जंगल में सिंह व्याघ्रादि भयंकर जीवों का वीरता से सामना कर लेता है, परन्तु वही मनुष्य जीवन रूपी युद्ध में परास्त होजाता है और अपने अन्तरङ्ग शत्रुओं के सामने गिर पड़ता है। उस समय उसका सारा बल और साहस जाता रहता है। असल बात यह है कि आत्म विजय के लिये, इन्द्रिय-निग्रह के लिये और दुःख और विपत्ति के समय शांत रहने के लिये जिस उच्च और ईश्वरीय बल और साहस की आवश्यकता होती है वह उस साहस से कहीं बढ़कर है जिसकी युद्धक्षेत्र में शत्रु को जीतने के लिये ज़रूरत होती है। इस ईश्वरीय साहस और विश्वास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये दोनों एक दूसरे के साथी हैं।

जिस अर्थ में हम विश्वास शब्द का प्रयोग कर रहे हैं उससे काम नहीं चलेगा। ईश्वर में भक्ति; शास्त्रों में श्रद्धा और मूर्ति पूजा में विश्वास केवल वाह्याडम्बर है। इनसे हम जीवन के रहस्य को नहीं समझ सकते और न इनसे हम में वास्तविक श्रद्धान ही हो सकता है। ऐसी बातों से वास्तविक

विश्वास बिलकुल भिन्न है। प्रायः देखा जाता है कि जो लोग ईश्वर भक्त मूर्तिपूजक, पंडित और शास्त्रों के पाठी होते हैं उन में ही दृढ़-विश्वास की कमी होती है जरा सी तकलीफ़ के आ जाने पर वे ही लोग पहिले दुःखी और निराश होने लगते हैं। जो मनुष्य जीवन की आकस्मिक घटनाओं के कारण क्रोध, शोक, चिंता और निराशा में पड़ जाता है तो समझ लेना चाहिए कि धार्मिक श्रद्धान और तत्वज्ञान के होते हुए भी उसमें अभी दृढ़ विश्वास की कमी है, कारण की जहां विश्वास है वहां साहस और धैर्य है और वहीं पर बल और दृढ़ता है।

मनुष्य के विचारों पर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए कारण कि वे नवीन विचारों के उठते रहने से बदलते रहते हैं। पदार्थ की वास्तविकता से उनका तनिक भी सम्बन्ध नहीं है कारण कि वे पानी के बुलबुलों की भांति ऊपर ही ऊपर रहते हैं, परन्तु उन सबके पीछे वही आत्मा है और वही मन है। जिन मनुष्यों में भलाई नहीं है, वे नास्तिक हैं चाहे वे मंदिर में जाकर घंटों पूजा पाठ करते हों और अपने को धर्मात्मा दिखलाते हों और जिन मनुष्यों में भलाई पाई जाती है वे आस्तिक हैं चाहे वे किसी भी धर्म और आम्नाय के मानने वाले न हों। वे ही लोग अश्रद्धानी और अविश्वासी हैं जो अपने दोषों को न देखकर दूसरों पर दोषारोपण करते हैं और दूसरों को अपने दुःख का कारण समझते हैं। जो लोग भलाई की शक्ति को नहीं मानते और अपने जीवन में और प्रतिदिन के कार्य व्यवहार में बुराई की शक्ति को स्वीकार करते हैं, वास्तव में वे ही नास्तिक हैं। विश्वास से मनुष्य को ऐसा भारी साहस

होता है कि उसके द्वारा उसके जीवन के सम्पूर्ण कष्ट और निराशाएं जो स्वार्थ के कारण उत्पन्न होती हैं, दूर होजाती हैं। निश्चय से विजय प्राप्त होती है। असफलता से भी उसे सफलता होती है। इस साहस से मनुष्य में सहन-शीलता आती है. धैर्य बढ़ता है और जीवन-संग्राम में बल प्राप्त होता है। इसी के द्वारा मनुष्य इस बात का ज्ञान होता है कि संसार में प्रत्येक वस्तु सत्य के अटल सिद्धांत पर संचालित हो रही है और इस बात का विश्वास होता है कि अंत में मेरे हृदय की विजय होगी और मेरे मन की शक्ति अद्भुत है।

अतएव प्रिय पाठको, अब तुम विश्वास रूपी दीपक को अपने हृदय-मंदिर में जला लो और उसके प्रकाश में अन्धकार का नाश करते हुए आगे बढ़ो। यद्यपि उसका प्रकाश कम है और ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश के साथ उसकी तुलना नहीं की जा सकती, तथापि उसके द्वारा तुम संदेह रूपी बादलों और निराशा रूपी अन्धकार को नाश कर सकते हो। शोक और दुःख के संकीर्ण और कंटकमय मार्गों और लोभ और अनिश्चय के कर्दमी स्थानों को पार कर सकते हो। इस विश्वास से तुम अपने हृदय रूपी वन के भंयकर हिंसक जीवों को भगा सकते हो और पवित्र जीवन के खुले हुए मैदानों में और विजय के उच्च शिखरों पर सुगमता से पहुंच सकते हो। वहां पर फिर विश्वास के धुंधले प्रकाश की आवश्यकता नहीं रहेगी कारण कि भय, शोक, शंका और अन्धकार सब पीछे रह जाएंगे और तुम नवीन ज्ञान को प्राप्त कर लोगे, तुम्हारा जीवन भी नवीन हो जाएगा और तुम पूर्ण ज्ञान-ज्योति का अनुभव करते हुए शांति प्राप्त करोगे।

२. मनुष्यता और सत्यता ।

धार्मिक बनने के लिए मनुष्य को पहिले मनुष्यता सीखनी चाहिए। नैतिक बल में ही सच्ची भलाई है। उससे अलग कोई भलाई नहीं रह सकती। छल, कपट, पाखंड, मिथ्याभिमान, झूठ और चापलूसी को अपने मन से बिलकुल निकाल डालो। इनका काला मुंह करदो। बुराई से कायरता, निर्बलता और प्रभावशून्यता आती है, परन्तु भलाई से वीरता, दृढ़ता और साहस आता है। स्त्री पुरुषों को भलाई का उपदेश देने से हमारा यही अभिप्राय है कि वे दृढ़ और स्वतंत्र बनें और आत्म-निर्भरता का पाठ सीखें। वे लोग भारी भूल करते हैं कि जो समझते हैं कि हम लोगों को नम्रता, पवित्रता और संतोष आदि गुणों को सिखलाकर उन्हें निर्बल बनाते हैं। ये ईश्वरीय गुण हैं और जो इन्हें अच्छी तरह समझते हैं वे ही वास्तव में सच्चे स्त्री पुरुष कहलाने योग्य हैं। उन्हीं में विजयी जीवन प्राप्त करने की शक्ति है जो साधारण मनुष्यों की भांति पाशविक शक्ति रखते हुए नैतिक गुणों से अलंकृत हैं और जिनमें उच्चकोटि की पवित्रता है।

मनुष्य के भीतर एक प्रकार की पाशविक शक्ति पाई जाती है जो समय समय पर रूप बदलती रहती है। क्रोध और आवेश के समय वह मनुष्य को अंधा बना देती है जिससे

वह मनुष्यता को भूल कर आत्मगौरव और श्रेष्ठता को तिलांजलि दे देता है। यदि मनुष्य उस शक्ति पर अपना अधिकार जमा ले और उसको अपने वश में करके उचित रीति से काम में लाए, तो वह उस ईश्वरीय बल को प्राप्त कर सकता है कि जिसके द्वारा वह श्रेष्ठ, उत्तम और आनंदप्रद जीवन भोग सकता है।

जो पिशाच तुम्हारे हृदय के भीतर आसन जमाए बैठा है उसको अवश्य ताड़ना देनी चाहिए और अपना आज्ञाकारी बनाना चाहिए। तुम्हें अपने मन और हृदय का स्वामी स्वयं बनना चाहिए। तुम उसी समय तक निर्बल और हीन दशा में रहोगे, जब तक कि तुम नीच और तुच्छ विचारों के आधीन रहोगे। तुम को अपने हृदय में उच्चभावों और उच्चआकांक्षाओं को स्थान देना चाहिए। तुम्हें कषाय, वासनाओं के वशीभूत न होजाना चाहिए और न उनका दास और गुलाम ही बन जाना चाहिए; किंतु तुम उन्हें दबाकर अपने वश में कर लो और उन्हें अपना दास बना लो। यदि तुम अपनी इन्द्रियों को अपने वश में करके रक्खोगे और उन पर अपना पूर्ण स्वामित्व जमा लोगे तो वे तुम्हारी दासी होकर रहेंगी और तुम्हारी बहुत कुछ सेवा कर सकेंगी।

तुम नीच नहीं हो और न तुम्हारे शरीर वा मन का कोई भाग ही नीच है। प्रकृति में कभी भूल नहीं हो सकती। सम्पूर्ण संसार सत्य पर ही स्थिर है। तुम्हारी समस्त शक्तियां और वृत्तियां अच्छी हैं। उनको उचित रीति से काम में लाना ही बुद्धिमत्ता है और पवित्रता और प्रसन्नता का कारण है;

किंतु उनका अनुचित रीति से प्रयोग करना मूर्खता है और महान् पाप और दुःख का कारण है।

मनुष्य अपना शत्रु आप है। वह काम से, क्रोध से, घृणा से, द्वेष से, जिह्वा लोलुपता और भोग विलासों, से अपना नाश अपने आप कर डालता है। परन्तु अपने दुःख का कारण संसार को समझ कर वह संसार को दोषी ठहराता है। यह उसकी मूर्खता है। संसार का इसमें कुछ भी दोष नहीं है। दोष तो स्वयं उसी का है।

परंतु जो मनुष्य सदा अपने आप को ही धिक्कारता रहता है और अपने स्वभाव की निंदा करता रहता है वह भी अपने आत्मा-गौरव को खो बैठता है। ऐसा करना भी उचित नहीं है। फिर क्या करना चाहिए? मनुष्य को सदा अपने ऊपर शासन करना चाहिये और उतावली और आवेश को रोकना चाहिये उसका हृदय ऐसा उदार होना चाहिये कि उसमें कभी क्रोध का आवेश न हो और न कभी किसी मत वा सम्प्रदाय के प्रति घृणा हो। जो मनुष्य कट्टर, दुराग्रही और वितंडावादी हों उनके साथ कभी वाद विवाद नहीं करना चाहिये।

शांत, विनीत और निर्दोष भाव ही मनुष्य की पूर्णता और सत्यता को प्रगट करता है अर्थात् जो मनुष्य शांत रहता है, दूसरे की बात में विना प्रयोजन दखल नहीं देता और किसी से द्वेष नहीं रखता और न किसी का जी दुखाता है वही सच्चा है। दूसरों का आदर सत्कार करो और अपना मान रखो अपना मार्ग-निर्दिष्ट करलो और उसमें दृढ़ता और निर्भीकता के साथ पग रखते हुए आगे बढ़े चलो परन्तु दूसरों के कार्य में किसी

प्रकार की बाधा न डालो, रोड़ा न अटकाओ। सच्चे मनुष्य में भिन्न भिन्न गुण इस रीति से मिले होते हैं कि वे कभी पृथक् नहीं किये जा सकते। उसमें दयालुता के साथ साथ अद्भुत शक्ति रहती है कि जिससे वह अपने मार्ग पर अटल जमा रहता है। वह अपने को दूसरी समाजों में ऐसी आसानी से मिला सकता है कि मानों उसी का अंग है, परन्तु साथ में अपने दृढ़ सिद्धांतों से कभी विचलित नहीं होता। उसको यदि मृत्यु का भी सामना करना पड़े तो वह उसके लिये सहर्ष तैयार रहता है, परन्तु सचाई को कभी हाथ से नहीं जाने देता। साथ ही इसके उसमें एक प्रकार की दया और सहानुभूति भी पाई जाती है जिससे वह असहाय और भूले भटके शत्रुओं तक की भी रक्षा कर सकता है। ऐसे ही मनुष्य को सच्चा मनुष्य कहते हैं। उसी में मनुष्यता और सत्यता है।

सदा अपनी अन्तरात्मा का आदेश मानो और उन पुरुषों को आदर की दृष्टि से देखो जो ऐसा करते हैं चाहे उनकी अन्तरात्मा उनको तुम से विपरीत मार्ग में ले जाए। प्रायः देखा जाता है कि एक धर्म के मानने वाले मनुष्य दूसरे धर्म वालों को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते हैं और कहते यह हैं कि हम-को उन पर दया आती है। यह दया कैसी ? हम तो इसको दया नहीं कहते। दया तो उसका नाम है कि निर्बल, पीड़ित और असहाय मनुष्यों को देखकर उनके साथ सहानुभूति प्रगट की जाए। जो लोग सच्चे दयावान होते हैं वे कभी अपने मुंह से यह नहीं कहते कि हम तुम पर दया करते हैं। वे सदैव अपना कार्य करते रहते हैं। तुम लोगों को ज़बरदस्ती अपने विचारों का अनुयाई क्यों बनाते हो ? तुम उपदेश दो, अपने

मत का प्रतिपादन करो। जो लोग तुम्हारे विचारों को पसन्द करेंगे वे स्वयंमेव तुम में मिल जांयगे। और तुम्हारे अनुयाई बन जांयगे। परन्तु यदि वे तुम्हारे विचारों को पसन्द न करें और तुम्हारे मत को ग्रहण न करें तो वे मनुष्यत्व से नहीं गिर जांयगे। तुम्हें उनसे केवल इस कारण घृणा नहीं करनी चाहिये कि उनके विचार तुमसे नहीं मिलते या वे तुम्हारे विचारों को स्वीकार नहीं करते। मनुष्यता इसका नाम नहीं है कि दो धर्मावलम्बी परस्पर लड़ें, एक दूसरे को बुरा कहें। हिन्दू मुसलमान की निंदा करे और मुसलमान हिंदू की निंदा करे। सहिष्णुता होनी चाहिए। तुम्हारे विचार और मत भले ही भिन्न भिन्न हों, परंतु परस्पर में द्वेष नहीं होना चाहिए।

यदि हम इस नियमबद्ध संसार में स्वतंत्र और स्वाधीन बनना चाहते हैं तो हमारे स्वतंत्र विचार होने चाहिएं और हमें दूसरों के स्वतंत्र विचारों का आदर करना चाहिए। यदि हम दृढ़ और पुरुषार्थी बनना चाहते हैं तो हमें उच्च और उदार हृदय होना चाहिए और यदि हम जीवन के दुःखों पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें तुच्छ और घृणित विचारों का अपने हृदय से समूल नाश कर देना चाहिए।

जब लोग अपनी निर्बलता पर रोते हैं और मानसिक वेदना और हृदय की नीचता पर सन्ताप करते हैं तो फिर इनसे छुटकारा पाना और विजय प्राप्त करना मनुष्य के लिए कितना आवश्यक है। यह कार्य तभी हो सकता है कि जब मनुष्य अपना शासक आप बने, हृदय की निर्बलता को बिलकुल निकाल दे, स्वार्थ का काला मुंह करदे जो दुःख और निर्बलता

का कारण है। कुत्सित, अस्वाभाविक और पापयुक्त इच्छाओं के दास मत बनो और न गिराने वाले आत्म-प्रेम और आत्म-दया को अपने हृदय में स्थान दो; किंतु जितना शीघ्र होसके, दृढ़तापूर्वक इनको समूल नष्ट कर दो। मनुष्य को अपना जीवन अपनी मुट्ठी में रखना चाहिए कि जिससे जब चाहे उसे उठाले और जब चाहे नीचे रख दे। उसे वस्तुओं को अपने काम में लाना चाहिए न कि वस्तुएं उसे अपने काम में लाएं। उसे भोग विलासों का असहाय बंदी और आवश्यकताओं का अनन्यदास नहीं बनना चाहिए; किंतु प्रत्येक अवस्था में आत्म-संतोषी, आत्म-संयमी और स्वाधीन बनना चाहिए। उसे अपनी इच्छाओं को आत्म-विजय की ओर लगाना होगा और प्रकृति के नियमों का पालन करना होगा। जो मनुष्य प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करता है वह बड़ा अपराध करता है। यही सम्पूर्ण दुःखों का मूल है। अज्ञानता के वश वह समझता है कि मै प्रकृति के नियमों पर विजय प्राप्त कर सकता हूं और दूसरों की इच्छाओं को अपने आधीन कर लूंगा; परंतु इस भांति वह अपनी शक्ति को नष्ट कर देता है। मनुष्य अपनी कृतघ्नता पर, अज्ञानता पर, पाप और अहकार पर और अपने विचारों की अराजकता पर विजय प्राप्त कर सकता है और आत्म विजयी बन सकता है। इसी में उसकी मनुष्यता है और इसी में उसकी शक्ति है। जिस प्रकार बालक अपने पिता की इच्छा को भली भांति समझता और उसके अनुसार कार्य करता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने जीवन के नियमों को समझ सकता है और उनके अनुसार कार्य कर सकता है। वह अपने समस्त कार्यों और शक्तियों पर अधिकार

प्राप्त करके उनको निःस्वार्थ सेवा में लगा सकता है। ऐसी कोई बुरी आदत नहीं है जिसको वह समूल नष्ट न कर सके। कोई भी ऐसा पाप नहीं है जिसको वह त्याग न सकता हो और ऐसा कोई दुःख नहीं है जिसको वह दूर न कर सकता हो। अतएव मनुष्य को अपनी शक्ति का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और संसार की सम्पूर्ण वस्तुओं को अपने पैरों के नीचे दबाकर रखना चाहिये। उसको समझना चाहिये कि यह संसार मेरे लिये है और मै ही इसका स्वामी हूं। उसे डाकुओं की भांति इधर उधर ताक झांक करने की ज़रूरत नहीं है और न भिखारी की तरह दूसरों के आगे हाथ फैलाने की ज़रूरत है।

आत्म-निर्भरता और ईश्वरीय-नम्रता में परस्पर सम्बन्ध है। दोनों साथ २ पाई जाती हैं। मनुष्य में जितनी अधिक आत्म-निर्भरता होगी, उतनी ही अधिक नम्रता होगी। मनुष्य को गर्व और अहंकार उसी समय आता है जब कि वह अपना अनुचित दवाब दूसरों पर डालना चाहता है। ऐसा मनुष्य अपने को भी वश में नहीं रख सकता। वास्तव में सच्चा मनुष्य वही है जो अपने मन और इन्द्रियों को अपने वश में रख सकता है और उन पर पूर्ण रूप से शासन कर सकता है और साथ में दूसरों के प्रति दया और सहानुभूति का व्यवहार करता है।

शुरू में मनुष्य को सच्चा और ईमानदार होना चाहिए। छल, कपट करना भारी मूर्खता है। धोका देना संसार में सबसे बड़ी निर्बलता है। जो मनुष्य दूसरों को ठगने की कोशिश करता है वह पहिले आप ही ठगा जाता है। मनुष्य को छल,

कपट, नीचता और अधमता से ऐसे बचे रहना चाहिये कि जिससे दूसरों के सामने नीची निगाह न करनी पड़े अर्थात् दूसरों से लज्जित न होना पड़े और मन में किसी प्रकार का भय, सङ्कोच वा शंका न हो। जिस मनुष्य में सच्चाई नहीं है वह खाली घड़े के समान है। जो कुछ भी वह करता है वह निरर्थक और निष्प्रयोजन होता है। जिस प्रकार खाली घड़े में से पोलेपन की आवाज़ के सिवाय और कुछ नहीं निकल सकता, उसी प्रकार जिस हृदय में सच्चाई नहीं है उसमें से निरर्थक शब्दों के सिवाय और कुछ नहीं निकल सकता।

बहुत से मनुष्य जान बूझकर तो बेईमानी नहीं करते, किन्तु कभी कभी भूलकर ऐसा कर बैठते हैं। इसका भी परिणाम बहुत बुरा होता है। वे दुःख में पड़ जाते हैं। उनका नैतिक चरित्र बिगड़ जाता है। बहुत से मनुष्य ऐसे मिलेंगे कि जो नित्य मन्दिर में जाकर घण्टों पूजा उपासना करते हैं और शास्त्र-श्रवण करते हैं, किन्तु ज्योंही वहां से निकल कर बाहर आते हैं या तो किसी शत्रु की बुराई करते हुए या किसी अनुपस्थित मित्र की हंसी उड़ाते दिखलाई देते हैं और आश्चर्य यह है कि यदि वही मित्र उन्हें उस समय मिल जाए तो उससे मीठी मीठी बातें बनाने लगते हैं और गाढ़ा प्रेम दर्शाने लगते हैं। खेद यही है कि उन्हें अपनी भूल का कुछ भी पता नहीं है उनका स्वभाव ही मानो ऐसा होगया है। जब उनके मित्र उनके स्वभाव से परिचित होकर उनका साथ छोड़ देते हैं तो वे संसार की असारता और असफलता का रोना रोने लगते हैं और कहते हैं कि 'दुनियां के आदमी बड़े झूठे हैं'। सब स्वार्थ

के साथी हैं। कोई विश्वास करने के योग्य नहीं है। जिसे देखो वही अपने मतलब की बात कहता है।' अहा हा! कैसी अनोखी बात है। उलटा चोर कोतवाल को डांटता है।

निस्सन्देह ऐसे मनुष्यों का कोई मित्र नहीं होता कारण कि असत्यता चाहे दृष्टिगोचर न हो, परन्तु अनुभवगम्य तो अवश्य है। जो मनुष्य दूसरों पर विश्वास नहीं करते, दूसरे लोग उनका भी विश्वास नहीं करते। यदि तुम दूसरों के साथ निष्कपट व्यवहार करोगे तो दूसरे भी तुम्हारे साथ वैसा ही व्यवहार करेंगे। मित्र तो मित्र शत्रु का भी भला चाहो। मुंह देखी बात करना छोड़ो। किसी की भी पीठ पीछे बुराई मत करो। यदि तुम्हारा विश्वास मनुष्य मात्र से उठ गया है तो समझो कि तुम्हारी ही कुछ भूल है। अपने आप को सावधानी से देखो और अपनी भूल को ढूंढकर निकालो।

पांच महाव्रतों में सत्य भी एक महाव्रत है। चीन देश के नैतिक विद्वान महात्मा कानफूसस ने सत्य के विषय में कहा है कि "सत्यता ही हमारे जीवन का मुकुट है। सत्यता के बिना हमारे उत्तम से उत्तम कार्य भी निरर्थक हैं। जो लोग ऊपर से दिखलावे के धर्मात्मा बने हुए हैं वे निरे पाखंडी हैं। आंखों को चकाचौंध कर देने वाली रोशनी एक क्षणिक ज्योति के समान है जो तनिक से आवेश में बुझ जाती है"......यदि तुम शुद्ध-हृदय होना चाहते हो तो अपने को धोका देना छोड़ दो। पाप और बुराई से वैसी ही घृणा करो जैसी किसी भारी दुर्गन्धि से करते हो और भलाई से वैसा ही प्रेम करो जैसा कि

तुम किसी सुन्दर वस्तु से। इसके बिना आत्म-सम्मान नहीं हो सकता और यही कारण है कि सज्जन पुरुषों को एकांत समय में बहुत सावधानी से अपनी रक्षा करनी चाहिये।

जिस आदमी के पास कोई काम नहीं होता वह छिपे छिपे अपने समय को बुरे कार्यों में लगाता है और धीरे धीरे उसकी दुष्टता बढ़ती जाती है। निष्कपट और शुद्ध हृदय मनुष्यों के सामने वह छल कपट से अपने सद्गुणों को प्रगट करना चाहता है, परन्तु वह चाल चलने नहीं पाता कारण कि ताड़ने वाले ताड़ जाते हैं और उसके चरित्र का पता लगा लेते हैं।

कहा गया है कि जो मनुष्य अधिक काम करता रहता है, सैकड़ों मनुष्यों की उस पर दृष्टि रहती है। अतएव सच्चे मनुष्य की एकांत में सब से अधिक रक्षा होनी चाहिये।

सच्चा मनुष्य कभी कोई ऐसा काम नहीं करेगा और न कभी ऐसी कोई बात कहेगा कि जिसके प्रगट होने पर उसे लज्जित होना पड़े। वह अपनी सच्चाई के कारण ही अपने साथियों में दृढ़ता और निर्भयता के साथ चलता है। उसकी उपस्थिति मात्र से लोगों में बल आ जाता है। उसके शब्द इसीलिये ओजस्वी और प्रभावशाली होते हैं कि वे सच्चे होते हैं। उनमें झूठ का लेश भी नहीं होता। वह जिस कार्य को भी करता है उसी में उसको सफलता होती है। चाहे उसके शब्द सब लोगों को प्रिय न लगें, परन्तु उनके द्वारा वह उनके हृदयों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। वे उसका विश्वास और आदर करने लगते हैं।

साहस, सत्यता, उदारता, दयालुता और आत्म-निर्भरता आदि गुणों से ही मनुष्य दृढ़ और शक्तिशाली बन सकता है। जिस मनुष्य में ये गुण नहीं हैं, वह मिट्टी के खिलौने की भांति है। उसमें कुछ भी शक्ति और स्थिरता नहीं होती। वह सच्चे जीवन का कुछ भी सुख नहीं भोग सकता। और स्वतंत्रता का अनुभव नहीं कर सकता। प्रत्येक नवयुवक के लिये इन गुणों का प्राप्त करना आवश्यक है। जैसे २ इन गुणों की वृद्धि होती जायगी वैसे २ ही उसे जीवन में सफलता प्राप्त होती जायगी।

मैं इस पृथ्वी पर फिर से सतयुग को देखना चाहता हूं कि जब वास्तव में मनुष्य मनुष्य कहलाने योग्य होंगे। जब ऐसे दृढ़, बलवान और सत्यनिष्ठ मनुष्य जन्म लेंगे जो काम क्रोधादि कषायों से रहित होंगे, जिनमें क्षमा, शान्ति कूट कूट कर भरी होगी और ईर्ष्या और द्वेष का जिनमें लेश भी न होगा। जब स्त्रियां भी साक्षात् सीता और सावित्री होंगी जो सत्यता और पवित्रता की प्रतिमूर्ति होंगी और जिनमें कलह और ईर्ष्या का चिन्ह भी न होगा। ऐसे स्त्री पुरुषों से जो सन्तान उत्पन्न होगी वह ऐसी उत्तम और उदार होगी कि उसके भय से पाप और अज्ञानता का काला मुंह होजायगा। वे संसार में एक नया युग उत्पन्न कर देंगे, मानव जाति को उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुंचा देंगे और उसमें सुख शान्ति और प्रेम का स्रोत बहा देंगे। तभी संसार में पाप और दुःख पर विजयी जीवन का राज्य स्थापित होगा।

---

३. शक्ति और बल ।
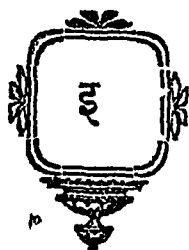
इस संसार में एक अद्भुत शक्ति पाई जाती है जो सर्वत्र और सर्वदा अपना कार्य किया करती है। एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं लेती। बराबर रात दिन कार्य किए जाती है। उसका यह काम न जाने कब से है और न जाने कबतक रहेगा। सूक्ष्म से सूक्ष्म अणु से लेकर स्थूल से स्थूल वस्तु में भी उसका कार्य हो रहा है। संसार में चर अचर जितने भी पदार्थ हैं, सब में उसी शक्ति ने गति प्रदान कर रक्खी है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी शक्ति का परिणाम है।

मनुष्य में भी यह शक्ति पाई जाती है और दया, प्रेम, ज्ञान, बुद्धि आदि मानसिक शक्तियों के रूप में उसमें प्रगट होती है। मनुष्य इस शक्ति को केवल धारण ही नहीं करता, किन्तु बुद्धिमानी से इसको उपयोग में भी लाता है। जिस प्रकार मनुष्य भाप, बिजली आदि वाह्य पदार्थों को अपने वश में करता जाता है और उनसे अपनी इच्छानुसार काम लेता है, उसी प्रकार इस शक्ति के द्वारा वह अपनी अंतरङ्ग शक्तियों को अपने वश में कर सकता है और उनसे सुख और शांति का उपभोग कर सकता है।

संसार में मनुष्य की वास्तविक अवस्था राजा के तुल्य है न कि दास के सदृश। भलाई के राज्य में वह शासक की भांति

है न कि बुराई के राज्य में चोर और तस्कर की भांति। वह अपने मन और शरीर का राजा है और अपने हृदय का स्वामी है। इन पर शासन करता हुआ वह सत्य का अधिपति बन जाता है और अपनी पवित्र और अविनाशी जीवन शक्ति को सन्मार्ग पर ले जा सकता है। ऐसा ही मनुष्य दृढ़, साहसी और निर्भीक होता है और उसका हृदय दया और करुणा से परिपूर्ण होता है। उसको कभी लज्जा के कारण अपना सिर नीचा नहीं करना पड़ता। वह निःशंक और निर्भय रहता है। उसमें स्वार्थ और पश्चात्ताप नाम को भी नहीं होता। वह कभी दूसरों के आगे हाथ नहीं पसारता, किंतु दृढ़ता और स्वतंत्रता के साथ निष्कलंक जीवन व्यतीत करता है।

वर्षों से मनुष्य अपने को नीच, दुर्बल, अयोग्य और असमर्थ समझता आता है और इसी दशा में सुख मानता रहा है, परन्तु अब शीघ्र ही एक नया युग आने वाला है कि जब मनुष्य को यह ज्ञात होगा कि मैं एक पवित्र और बलवान हूं और यदि इच्छा करूं तो मनमानी उन्नति कर सकता हूं। मेरी उन्नति में कोई भी बाधक नहीं हो सकता। मेरा उन्नति करना और ऊपर उठना न तो किसी बाह्य शत्रु, न किसी अड़ोसी पड़ोसी, न किसी राज्य, न किसी नियम और क़ानून और न किसी शक्ति के विरुद्ध होगा, किन्तु मूर्खता, अज्ञानता और दुःखों के विरुद्ध होगा जो मेरे मन रूपी राज्य के विरोधी हैं। मूर्खता और अज्ञानता के कारण ही मनुष्य दास बना रहता है और बुद्धि और ज्ञान के द्वारा वह फिर अपने खोए हुए राज्य को प्राप्त कर सकता है।

जिनकी इच्छा हो वे भले ही कहें कि मनुष्य निर्बल और असमर्थ है,परन्तु मैं तो सदैव यही कहूंगा कि मनुष्य में अद्भुत बलवीर्य है। मेरा इस प्रकार लिखना मनुष्यों के लिए है न कि बच्चों के लिए और मनुष्यों में भी केवल उन्हीं के लिए जो कुछ सीखना और लाभ उठाना चाहते हैं और संसार के उपकार के लिए अपने स्वार्थ और वासना की आहुति देने के लिए तैयार हैं और सत्य और निष्काम भाव से निष्कलङ्क जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। विजयी जीवन निर्बल और विचारशून्य मनुष्यों के लिए नहीं है और न उन लोगों के लिए है जो चञ्चल और अस्थिर प्रकृति के हैं और जिनका कोई सिद्धान्त नहीं है।

मनुष्य स्वामी है। यदि वह स्वामी न होता तो कदापि नियम के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता था। इस प्रकार उसकी निर्बलता ही उसकी शक्ति को प्रगट करती है। पवित्रता की शक्ति को उलटा काम में लाने से ही पाप होता है। मनुष्य में जो कुछ भी,निबर्लता और पाप है वह सब उसकी शक्ति और बल के दुरुपयोग के कारण ही है। इस हेतु पापी मनुष्य निर्बल नहीं है, बलवान है, किंतु अज्ञानी है कारण कि वह अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता है। शक्ति के दुरुपयोग के कारण ही दुःख उठाना पड़ता है। दुराचारी मनुष्य भी अपने आचरण को बदल कर सदाचारी बन सकता है। यदि तुम्हें अपने पापों पर दुःख और पश्चात्ताप होता है तो उनका करना छोड़ दो और उनके स्थान में पुण्य के कार्य करो। इसी तरह से तुम्हारी निर्बलता शक्ति के रूप में बदल जायगी, असमर्थता बल के रूप में परिवर्तित हो जायगी और दुःख और क्लेश सुख और शांति का

रूप धारण कर लेंगे। अपनी शक्ति को बुराई से हटाकर भलाई में लगाने से पापी से पापी मनुष्य भी धर्मात्मा और पुण्यात्मा बन सकता है।

संसार में जो शक्ति काम कर रही है यद्यपि वह अनन्त, असीम है; परन्तु विशेष रूप में वह परिमित भी कही जा सकती है। मनुष्य में भी वह शक्ति पाई जाती है और यह बात उसके अधिकार में है कि चाहे वह उसका सदुपयोग करे चाहे दुरुपयोग, चाहे उसको सुरक्षित रक्खे चाहे उसको व्यय कर दे। समुदाय रूप शक्ति का नाम ही बल है और बुद्धि-मानी इसी का नाम है कि इस शक्ति को किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए काम में लावे। वही मनुष्य प्रभावशाली और शक्ति-शाली है जो अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंको अपने अभीष्ट की प्राप्ति की ओर लगाता है और धैर्य पूर्वक कार्य करता हुआ उसकी पूर्ति की प्रतीक्षा करता रहता है और उसके लिये अपने समस्त सुखों की आहुति दे देता है। वही मनुष्य अज्ञानी और अस-मर्थ है जो विशेष कर इन्द्रियजन्य सुखों की इच्छा किया करता है और उनकी पूर्ति में हरदम लगा रहता है वा क्षण क्षण की चञ्चल कल्पनाओं के पीछे दौड़ा करता है जिसका परिणाम यह होता है कि अज्ञानतावश दुःख सागर में गोते लगाता है और मानसिक सुख से वंचित रहता है।

जो शक्ति एक ओर लगी हुई है वह दूसरी ओर काम में नहीं लाई जा सकती। यह एक विश्वव्यापी नियम है जो मन और जड़ पदार्थ दोनों में काम कर रहा है। अमेरिका के प्रसिद्ध दार्शनिक इमरसन ने इसको पूर्ति का नियम बतलाया है। यदि एक ओर लाभ है तो दूसरी ओर अवश्य हानि होगी।

यदि तराजू का एक पलड़ा ऊँचा हो तो दूसरा नीचा होगा। प्रकृति सदा समता रखने का उद्योग करती रहती है। जो शक्ति आलस्य में नष्ट कर दी जाती है वह फिर कभी काम में नहीं लाई जा सकती। जो लोग विषय लम्पटी हैं वे कभी सत्य के जिज्ञासु नहीं हो सकते। जिस शक्ति को मनुष्य क्रोधादि कषाय में खो देता है वह उसके सद्गुणों में से और विशेषकर क्षमा, धृति आदि गुणों में से आती है। आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ति के नियम को त्याग का नियम भी कह सकते हैं। यदि मनुष्य पवित्रता को प्राप्त करना चाहता है तो उसे अपनी स्वार्थ वासनाओं का त्याग कर देना होगा, यदि उसे प्रेम की प्राप्ति की इच्छा है तो घृणा और द्वेष को त्याग देना होगा और यदि वह सद्गुणों को प्राप्त करना चाहता है तो उसे दुर्गुणों और दुर्व्यसनों का परित्याग कर देना होगा।

सच्चे आदमी इस बात को बहुत जल्दी मालूम कर लेते हैं कि सफलता प्राप्त करने के लिए, दृढ़ बनने के लिए और सांसारिक,मानसिक वा आध्यात्मिक उन्नति के लिए इच्छाओं का निरोध करना होगा और केवल सुखों का ही परित्याग नहीं करना पड़ेगा किंतु बहुत से आवश्यकीय कार्यों को भी छोड़ देना होगा। दृढ़-सङ्कल्प मनुष्य को दुर्व्यसनों को,शारीरिक एवं मानसिक सुखों को, मित्र सम्बंधियों को, भोग विलासों को और उन सब बातों को जो उसके लक्ष्य के विरुद्ध हैं, त्याग देना पड़ेगा। उसे यह बात अच्छी तरह समझ लेनी होगी कि समय और शक्ति परिमित हैं और इसी लिए उसे समय और शक्ति का दुरुपयोग नहीं करना होगा।

अज्ञानी मनुष्य अपनी शक्तियों को विषय वासनाओं में

और इन्द्रिय सुखों में, क्षणिक भोग विलासों में और व्यर्थ की गप्पाष्टक में, कुत्सित विचारों में और क्रोधादि कषायों में, व्यर्थ के वितंडा वाद में और निष्प्रयोजन दूसरों को हानि पहुंचाने में नष्ट कर देते हैं और फिर अपने से अधिक सुखी और श्रेष्ठ मनुष्यों को देखकर दुःखी होते हैं कि हाय! हम अभागे हैं, हमारे नसीब में तनिक भी सुख नहीं बदा है और हमारे पड़ोसी ऐसे धनी मानी और सुखी हैं। परन्तु उन्हें इस बात का तनिक भी ज्ञान नहीं है कि जिन पड़ोसियों की धन सम्पदा को देख कर वे डाह करते हैं उन्होंने उसके लिए कितना श्रम किया है और कितना कष्ट उठाया है। जो मनुष्य न्याय पर जमा हुआ है, सच बोलता है और सदा अपने काम से काम रखता है उसे सब कोई प्यार करते हैं। एक बार तुम मन से अपने उद्देश्य में लग जाओ, अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को पूर्ण रूप से उसकी पूर्ति में लगादो और दूसरों के कार्य में कोई हस्तक्षेप न करो तो तुम्हें शीघ्र ही इस बात का पता लग जाएगा कि तुम्हारा जीवन सदा, सुखी और दृढ़ है।

यह संसार भलाई और शक्ति से घिरा हुआ है और यह सज्जन और बलवान मनुष्यों की रक्षा भी करता है। बुराई और निर्बलता स्वयं नाशवान हैं। विषय भोगों से सर्वनाश होता है। प्रकृति में सर्वत्र शक्ति का साम्राज्य है। जो मनुष्य सबसे अधिक बलवान होता है उसी की विजय होती है। यही सिद्धांत अटल है। इसमें मुझे कोई कठोरता दिखलाई नहीं देती। यह सिद्धांत प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से सच्चा है। पशुओं में प्रबल गुणों के होने से ही उनकी जाति उन्नति कर सकती है नैतिक गुण ही मनुष्य की रक्षा करते हैं

और यह अच्छा है कि मनुष्य उनके द्वारा अपनी नीच वृत्तियों को रोक दे। यह बात बिलकुल सच है कि जो मनुष्य नीच वृत्तियों के आधीन हो जाता है, उसका सत्यानाश हुए बिना नहीं रहता। न तो उसे वाह्य में शांति मिलती है और न अंतरंग में। नीचता के कार्य करने से उच्चकार्यों के करने की शक्ति नहीं रहती और धीरे धीरे एक दिन ऐसा आता है कि जब किसी भी काम करने की शक्ति नहीं रहती और उसका सर्वनाश हो जाता है; परन्तु भलाई के काम करने से जीवन का कभी नाश नहीं होता। यद्यपि ऐसा मनुष्य उन बहुत सी बातों को त्याग देता है कि जिनको संसार बहुमूल्य और प्रिय समझता है; परंतु उन वस्तुओं को नहीं त्यागता जो वास्तव में बहुमूल्य हैं। झूठ और अनर्थ का नाश हो जाना ही अच्छा है। जो मनुष्य अपने को भलाई और परोपकार में लगा देता है उसे यह देख कर प्रसन्नता होती है कि झूठ और अनर्थ का नाश हुआ इस लिए वह उस स्थान पर खड़ा होता है कि जहां त्याग का अंत होता है और चारों तरफ़ लाभ ही लाभ दृष्टि गोचर होता है। ऐसा ही मनुष्य स्थूल जगत में विजयी जीवन प्राप्त करता है और अंतरंग में सत्यता को प्राप्त करता है।

अतएव सब से पहिले बलवान् बनो। बल ही विजयी जीवन का एक मात्र आधार है। बिना किसी निश्चित उद्देश्य और दृढ़ प्रतिज्ञा के तुम्हारा जीवन दुःखी, निर्बल चंचल और अस्थिर होगा अपने प्रतिक्षण के कार्यों पर अपने अन्तःकरण के निश्चित उद्देश्यों की छाप लग जाने दो अर्थात् जैसा तुम्हारा अंतरंग उद्देश्य है उसी के अनुसार कार्य करो। यदि तुम्हारा हृदय शुद्ध है तो तुम्हारे भिन्न भिन्न समय के कार्य भी निर्दोष

होंगे। सम्भव है कि तुम कभी कभी गिर पड़ो, विपत्ति के आने पर कभी कभी अपने मार्ग से भी च्युत हो जाओ, परंतु यदि तुम अपनी आत्मा को नैतिक बल के द्वारा चलाते रहोगे, विषय भोगादि में न लिप्त होने दोगे और चंचल और अस्थिर विचारों की लहर में बह न जाओगे, तो तुम शीघ्र ही अपने मार्ग पर आ जाओगे और पहिले से भी अधिक बलवान् और बुद्धिमान बन जाओगे। अपनी अन्तरात्मा का आदेश मानो। अपना श्रद्धान बनाए रक्खो, अपने उद्देश्यों पर दृढ़ जमे रहो। जिस समय जो ठीक जान पड़े उसे कर डालो। भय, शंका, संकोच और आलस को अपने मनसे निकाल डालो। यदि तुम्हें इस बात का विश्वास हो कि यह काम बिना कठोर बने नहीं हो सकता तो उस समय तुम कठोर ही बन जाओ। बल प्राप्ति के उपायों में यदि भूल हो जाए तो हो जाने दो, परन्तु निर्बलता के उपायों की ओर कभी भूल कर भी मत देखो। जिन उपायों का तुम अवलम्बन करते हो, सम्भव है कि वे ठीक न हों, परंतु यदि वे तुमको ठीक मालूम हों तो तुम्हारा कर्त्तव्य यही है कि उन्हें काम में लाओ। यदि तुम्हारे हृदय में उन्नति की अभिलाषा है और तुम कुछ शिक्षा ग्रहण करना चाहते हो तो ऐसा करने से एक दिन तुम अवश्य ही ठीक मार्ग को पालोगे। कार्य करने से पहिले अच्छी तरह से विचार कर लेना चाहिए; परंतु जब कार्य शुरू कर दो फिर हिचकना और घबराना ठीक नहीं है। काम, क्रोध, दुराग्रह, लोभ और लालच को छोड़ दो। क्रोधी मनुष्य निर्बल होता है। दुराग्रही मनुष्य मूर्ख होता है कारण कि वह अपने दुराग्रह से कुछ भी नहीं सीख पाता। वह सदैव मूर्ख बना रहता है।

ऐसे मनुष्य की वृद्धावस्था में भी कुछ प्रतिष्ठा नहीं होती। कामी मनुष्यों में केवल भोग विलासों के लिए ही शक्ति होती है मनुष्यता और स्वाभिमान स्थिर रखने के लिए उनमें कुछ शक्ति नहीं होती। लोभी मनुष्य न तो सच्चे जीवन के महत्व को समझता है और न मनुष्यता को ही। वह अपनी शक्तियों को स्वर्गीय सुखों को प्राप्त करने के स्थान मे नरक की यातनाओं के सहन करने में लगाता रहता है।

तुम्हारी शक्ति तुम्हारे साथ है। तुम चाहो तो उसे बुरे कामों में लगा सकते हो और चाहो तो अच्छे कामों में लगा सकते हो। चाहे तुम उसके द्वारा अपनी स्वार्थ-सिद्धि करो और चाहे उसको भलाई के लिए रख छोड़ो। इसी शक्ति से तुम पशु बन सकते हो और इसी से देवता। चाहे जिस ओर तुम उसे ले जाओ उसी ओर अद्भुत काम करेगी। ऐसा विचार कभी मनमें न लाओ कि मैं निर्बल हूं। अपनी मानसिक शक्तियों को सद्मार्ग में लगाकर तुम अपनी निर्बलता को सबलता में बदल सकते हो और अपनी भिन्न भिन्न शक्ति को महान बल के रूप में परिवर्तन कर सकते हो। अपने विचारों को सद्मार्ग पर लगाओ। अपनी कुत्सित इच्छाओं को मन से निकाल दो और उनके पूरा न होने पर पश्चात्ताप मत करो। दूसरों पर दोषारोपण करना और अपने मन में दुःखी होना छोड़ दो और बुराई से सदा बचते रहो। अपना मस्तक ऊंचा रक्खो, अपनी ईश्वरीय शक्ति पर खड़े हो जाओ और अपने मन और जीवन से नीचता और पामरता के विचारों को निकाल डालो, गुलाम की तरह अपने जीवन को बुरी तरह मत काटो, किन्तु वीरों की भांति आनन्दमय व्यतीत करो।

---

४. आत्म-संयम और सुख।

जब मानसिक शक्ति किसी सरल मार्ग पर लगाई जाती है तो उसे निर्बलता कहते हैं। परन्तु जब वह चहुंओर से एकत्रित होकर एक केन्द्र पर आती है और किसी उच्च उद्देश्य की पूर्ति के लिए कठिन मार्ग पर लगाई जाती है तो उसी का नाम बल हो जाता है और इस बल का प्राप्त करना और शक्ति का केन्द्रित करना केवल आत्म-संयम के द्वारा ही हो सकता है।

आत्म-संयम के समझने में प्रायः लोग भूल कर बैठते हैं। आत्म-सयम के ये अर्थ नहीं हैं कि उग्र तपश्चरण किया जाए और शरीर को कष्ट दिया जाए जैसा कि आजकल बहुत से जटाधारी साधु सन्यासी किया करते हैं। आत्म-संयम के ये अर्थ हैं कि आत्मिक बल और शक्ति प्राप्त की जाए। इसका अभिप्राय मृत्यु का आह्वानन करना नहीं है; किंतु जीवन को स्थिर रखना है। यह एक प्रकार का उच्च और ईश्वरीय परिवर्तन है जिससे निर्बलता सबलता में, नीचता श्रेष्ठता में और बुराई भलाई के रूप में बदल जाती है और मनुष्य की तामसिक वृत्तियां सात्विक वृत्तियों का रूप धारण कर लेती हैं।

जो मनुष्य दूसरों की दृष्टि में अपने को अच्छा जताने के लिए अपने वास्तविक रूप को छिपाता है वह यथार्थ में ढोंगी

है। आत्म-संयम का उसमें लेश भी नहीं है। जिस प्रकार कोई विज्ञानवेत्ता कोयले को गैस में और पानी को भाप में बदल देता है और फिर उनसे लोगों को सुख पहुंचता है, उसी प्रकार जो मनुष्य शुद्ध हृदय से आत्म-संयम का अभ्यास करता है वह अपनी नीच वृत्तियों को सद्गुणों के रूप में बदल देता है जिससे उसे तथा सम्पूर्ण संसार को लाभ पहुंचता है।

जितना ही मनुष्य आत्म-संयमी होगा उतना ही वह बड़ा होगा और उतना ही सुखी और बुद्धिमान होगा और जितना ही वह अपनी पाशविक वृत्तियों के आधीन रहेगा उतना ही वह दुःखी, मूर्ख और नीच होगा।

जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को दमन कर सकता है वह अपने भाग्य, स्थिति और जीवन का स्वामी है। वह चाहे जैसा अपने को बना सकता है। ऐसा मनुष्य कभी दुःखी और उदास नहीं रहता। सदा प्रसन्न ही रहता है। जो अपने को वश में नहीं रख सकता, अपने ऊपर शासन नहीं कर सकता, वह सदा दुःख और विपत्ति में फंसा रहता है। वह अपने भाग्य और अपनी परस्थिति दोनों को आप बिगाड़ लेता है। जिस समय उसकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती, उसी समय वह दुःखी और निराश होने लगता है। मूर्खतावश वह वाह्य वस्तुओं में ही सुख ढूँढ़ता है।

इस संसार में ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है जिसका सर्व-नाश हो जाए। हां शक्ति का रूपान्तर अवश्य हो जाता है; परन्तु उसका नाश कभी नहीं होता। पहिले की पुरानी और

ख़राब आदतों को छोड़ने से यही मतलब है कि उनके स्थान में नई और अच्छी आदतें ग्रहण की जाएँ। उत्पत्ति से पहले त्याग की आवश्यकता है। नीच, क्षणिक और घृणित विचारों के नाश होने से उनके स्थान में पवित्र, स्थाई और सुन्दर विचारों की उत्पत्ति होती है। जब सर्व प्रकार के दुःख हृदय से निकल जाते हैं, तब उनके स्थान में पूर्ण सुख प्राप्त होता है। जब बीज का नाश हो जाता है; तभी फूल की उत्पत्ति होती है।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि रूपान्तर जो होता है वह बहुत समय में होता है, शीघ्र नहीं होता और इसमें कठिनता भी होती है। प्रकृति में उत्पत्ति के लिए उद्योग और सन्तोष की बड़ी आवश्यकता है। उन्नति क्षेत्र में विजय प्राप्ति के साथ युद्ध लगा हुआ है। बिना युद्ध के विजय नहीं हो सकती, किंतु जब विजय हो जाती है तो वह स्थाई होती है। विजय के प्राप्त होते ही सारे दुःख नाश हो जाते हैं। किसी मज़बूत जमी हुई आदत को छोड़ने और किसी मानसिक वृत्ति के बदलने में, जिन्होंने स्थाई रूप धारण कर लिया है और उनके स्थान में सद्भाव और उत्तम गुणों के लाने में जो कष्ट होता है उसके लिए बड़े भारी धैर्य और सहनशीलता की ज़रूरत है। इसी जगह लोग असफलीभूत रहते हैं और इसी स्थान से प्रायः गिर पड़ते हैं और आत्म-संयम के मार्ग को कठिन और दुःसाध्य जान कर त्याग देते हैं और अपने पुराने सुगम मार्ग का अवलम्बन कर लेते हैं। इस प्रकार वे लोग स्थाई और अनन्त सुख से वंचित रहते हैं और बुराइयों के ऊपर विजय प्राप्त नहीं कर सकते।

जो मनुष्य आत्म-संयमी है वही पूर्ण आनन्द को प्राप्त कर

सकता है जो लोग विषय लम्पटी हैं और इन्द्रियों के दास बने हुए हैं उनसे सुख कोसों दूर है। जितनी ही मनुष्य में आत्म-संयम की कमी होती है उतना ही कम सुख उसे मिलता है और वह दुःख और दुर्बलता के गढ़े में गिरता है। आत्म-संयम की कमी के कारण मनुष्य कभी कभी उन्मत्त हो जाता है कि, जब वह तनिक भी अपने मन पर शासन नहीं कर सकता। जितना ही मनुष्य आत्म-संयम की प्राप्ति करता जाता है उतना ही वह पूर्ण सुख के सन्निकट होता जाता है और उसमें बल और वीर्य आता जाता है। पूर्ण आत्म-संयमी मनुष्य के सुख और आनन्द की कोई सीमा ही नहीं हो सकती।

जब मनुष्य को इस बात का ज्ञान हो जाता है कि आत्म-संयम और सुख एक ही चीज़ हैं, तब उसको केवल अपने हृदय में और बाह्य जगत में उन मनोवृत्तियों के ढूंढने की आवश्यकता है जो आनन्द को नाश कर देती हैं। संसार में स्त्री पुरुषों के जीवन को देखकर उसे इस बात का बहुत जल्दी पता लग जाएगा कि किस प्रकार मनुष्य अपने बेसमझे बूझे शब्दों से कटु वाक्यों से, छल कपट से, थोथे अभिमान और पक्षपात से दुःख और नाश के कारण उपस्थित करता है। अपने ही पूर्व जीवन पर विचार करने से उसे ज्ञात हो जाएगा कि आत्म-संयम की कमी के कारण ही उसे दुःख,शोक,चिंता व्याकुलता और पश्चात्ताप उठाना पड़ा है।

परन्तु नियमबद्ध, उत्तम और विजयी जीवन में दुःख,शोक, चिंता नाम को भी नहीं पाई जाती। आत्म-संयमी मनुष्य की अवस्था दिन दिन अच्छी होती जाती है और उसे वे साधन

प्राप्त हो जाते हैं कि जिनसे जीवन-संग्राम में बहुत जल्दी और बड़ी सुगमता से विजय-प्राप्त हो जाती है। उसको अब पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता कारण कि वह अब किसी प्रकार की भी भूल नहीं करता। न उसे अब चिंता करनी पड़ती है कारण कि उसने स्वार्थ का सर्वथा नाश कर दिया है और अब उसे दुःखी भी नहीं होना पड़ता कारण कि उसका प्रत्येक कार्य सत्य पर निर्धारित है।

मनुष्य मनोवांछित पदार्थ के लिए जी तोड़कर श्रम करता है और रात दिन उसकी चिंता में रहता है, परन्तु फिर भी उसे वह पदार्थ नहीं मिलता। इसका क्या कारण है ? इसका कारण यह है कि वह आत्म-संयमी नहीं है। जो मनुष्य आत्म-संयमी होता है वह जिस वस्तु की प्राप्ति के लिए उद्योग करता है वह उसे तुरंत मिल जाती है। घृणा, असन्तोष, लोभ इन्द्रिय लोलुपता, व्यर्थ की आकांक्षाएं और कुत्सित इच्छाएं बहुत ही भद्दे और बुरे शस्त्र हैं। इनसे मनुष्य का जीवन बिगड़ जाता है। जो व्यक्ति इनका प्रयोग करता है वह महामूर्ख और अज्ञानी कहलाता है। प्रेम, धैर्य, दयालुता, आत्म-संयम, उच्च आकांक्षाएं, पवित्र इच्छाएँ उत्तम शस्त्र हैं। इनसे मनुष्य का जीवन सुधर जाता है और जो व्यक्ति इनका प्रयोग करता है वह चतुर और बुद्धिमान कहलाता है।

जितना मनुष्य उतावली और स्वार्थयुक्त इच्छाओं से प्राप्त करता है उससे कहीं अधिक शांति और त्याग से प्राप्त हो सकता है। प्रकृति के कार्यों में कभी शीघ्रता नहीं पाई जाती। उसके कार्य नियत समय पर फल देते हैं। सत्यता को तुम

अपनी इच्छानुसार नहीं चला सकते, किंतु तुमको उसकी आज्ञाओं पर चलना होगा। उतावली और क्रोध से बढ़कर हानिकारक कोई वस्तु नहीं है। मनुष्य को यह भली भांति जान लेना चाहिए कि मैं बाह्य पदार्थों पर शासन नहीं कर सकता। हां, अपने ऊपर शासन कर सकता हूं। मैं दूसरों की इच्छाओं को अपने वश में नहीं कर सकता, किंतु अपनी इच्छाओं को अपने वश में कर सकता हूं। जो मनुष्य सत्यप्रिय है, बाह्य पदार्थ उसकी सेवा करते हैं। जो मनुष्य आत्म-संयमी है, लोग उसकी शरण में आते हैं और उसको अपना नेता मानते हैं।

यद्यपि बहुत कम लोगों ने इस बात को समझा है, तथापि यह अत्यन्त सरल और नितान्त सत्य है कि जो मनुष्य दुःख और विपत्ति के समय अपने को वश में नहीं रख सकता वह कदापि दूसरों पर शासन नहीं कर सकता। महात्मा कानफूसस की सब से बड़ी शिक्षा यह है कि दूसरों पर शासन करने के पहिले मनुष्य को अपने ऊपर शासन करना, अपने को वश में करना सीखना चाहिए। जो मनुष्य स्वभावतः कार्य के समय शंका में पड़ जाते हैं,क्रोध और आवेश में आजाते हैं, वे संसार में किसी भारी काम के करने के योग्य नहीं हैं। ऐसे मनुष्य जीवन के साधारण कार्यों में भी कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। उनसे अपने घर और दूकान का भी प्रबंध नहीं हो सकता। आत्म-सयम का न होना मूर्खता है और मूर्खता बुद्धि से कभी आगे नहीं बढ़ सकती।

जो मनुष्य अपने चंचल, अस्थिर और डांवा डोल विचारों को वश में करना सीख रहा है, वह प्रतिदिन ज्ञान प्राप्त कर

रहा है। यद्यपि अभी उसको आनन्द भवन नहीं प्राप्त हुआ है तथापि वह उसके लिए सामग्री संचय कर रहा है और वह दिन शीघ्र आने वाला है कि जबवह अपने सुन्दर आनन्द भवन में सुख शांति से निवास करेगा। आत्म-संयम में ही ज्ञान है और ज्ञान से ही सुख और शांति का लाभ होता है।

आत्म-संयम का जीवन नीरस मरुभूमि की भांति नहीं है। निस्संदेह आत्म-संयम में त्याग है, परन्तु यह त्याग मिथ्या वस्तुओं का है कि जिससे स्थाई सुख और सत्यता की प्राप्ति होती है। आत्म-संयम से सुख में तनिक भी बाधा नहीं आती, किंतु सुख की बृद्धि होती है। सुख ही जीवन है; परन्तु सुख की इच्छा में अंधे बन जाने से सुख का नाश हो जाता है। उस मनुष्य से अधिक दुःखी और दरिद्री कोई नहीं जो सदैव नवीन भोग विलासों की इच्छा किया करता है। उस मनुष्य से अधिक सुखी कोई नहीं है जो आत्म-संयमी, सन्तोषी, शांत और विवेकी है। क्या अधिक भोजी, शराबी और विषय लम्पटी का जीवन अधिक सुखी और शांत है जो केवल इन्द्रिय सुखों के लिए ही जीता है या संयमी पुरुष का जिसने अपने मन और शरीर पर अधिकार प्राप्त कर लिया है और उनको अपनी इच्छानुसार चलाता है? एक बार मैं पक्का रसीला सेव जो उसी समय पेड़ से तोड़ कर लाया गया था, खा रहा था। उस समय एक आदमी जो मेरे पास खड़ा हुआ था, बोला, 'यदि कोई मुझे इस सेव के स्वाद का अनुभव करादे तो मैं उसे अपना सर्वस्व देने को तैयार हूं।' मैंने पूछा कि क्या आप इसको नहीं खा सकते हैं? उसने कहा कि

"मैंने मदिरा और तम्बाकू इतनी पी डाली है कि मुझ में से इसके स्वाद के अनुभव करने की शक्ति जाती रही है।" इसी प्रकार जो मनुष्य क्षणिक सुखों में फँस जाता है वह फिर जीवन के सच्चे सुखों से वंचित रह जाता है।

जिस प्रकार इन्द्रिय-दमन करने से मनुष्य को शारीरिक सुख, बल और वीर्य की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार विचारों को अपने आधीन करने से आध्यात्मिक बल, सुख और शांति मिलती है; किंतु विद्या, बुद्धि और ज्ञान की भी वृद्धि हो जाती है। जब मूर्खता और स्वार्थपरता का नाश हो जाता है, तब ज्ञान और बुद्धि का प्रकाश होता है। गुण ग्रहण करना मानो ज्ञान प्राप्त करना है। शुद्ध और पवित्र मन से ही ज्ञान की वृद्धि होती है। वही सभ्य और सुशील कहलाता है जो अपने ऊपर आप शासन कर सकता है।

मैंने बहुत से मनुष्यों को यह कहते हुए सुना है कि भलाई करते करते जी ऊब जाता है। हां, यदि कोई मनुष्य विषय भोगों को बाह्य रूप से तो बिलकुल छोड़ दे; परन्तु अन्तरंग में उनकी इच्छा रक्खे तो यथार्थ में ऐसे मनुष्य के लिए भलाई एक नीरस वस्तु के सदृश है। परन्तु आत्म-संयमी पुरुष केवल इन्द्रिय-जन्य सुखों और भोग विलासों को ही नहीं त्यागता, किन्तु मनमें उनकी इच्छा तक भी नहीं करता। वह नित्य आगे बढ़ता जाता है, पीछे को नहीं देखता। ऐसे मनुष्य को पग पग पर सौंदर्य, पवित्रता, सुख और शांति मिलती है।

आत्म-संयम की महिमा को देखकर मुझे बड़ा ही आश्चर्य

होता है। मै यह देखकर स्थगित हो जाता हूं कि सच्चाई में कितनी अपरिमित शक्ति भरी हुई है। मुझे इस बात को देख-कर बड़ा हर्ष और आनंद होता है कि भविष्य में इसके द्वारा बड़ी बड़ी आशाओं की पूर्ति होगी। मुझे इसके विभव और प्रकाश में सुख मिलता है।

आत्म-संयम के मार्ग में जो विजय प्राप्त होती है उसमें बड़ा सुख मिलता है, उससे अपनी बढ़ती हुई शक्ति का ज्ञान होता है ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति होती है और मनुष्य सेवा का स्थाई सुख मिलता है। आत्म-संयम के मार्ग पर थोड़ा भी चलने वाला मनुष्य अपने में शक्ति का अनुभव करता है, सफलता प्राप्त करता है और उस सुख का अनुभव करता है जिसको आलसी और मूर्खजन नहीं जान सकते। जिस मनुष्य ने आत्म-संयम के मार्ग को तै कर लिया है वह आत्म विजयी होगा। वह तमाम बुराइयों को जीतकर इस संसार के विकारों से पार होगा। वह इस सृष्टि पर योगियों की भांति दृष्टिपात करेगा और सत्य की नित्यता का अनुभव करेग ।

५. सादगी और स्वतंत्रता ।
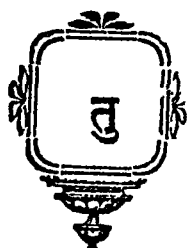
तुम्हें अब यह भली भांति ज्ञात हो गया है कि बुरी इच्छाओं और विषय वासनाओं के द्वारा जीवन कैसा भारी मालूम होने लगता है और तुम्हें यह भी अनुभव हो गया है कि इन सब विकारों के दूर करने से कितना आनन्द प्राप्त होता है। तुम्हारा अनुभव अब तुमको बतला रहा है कि नाना प्रकार की इच्छाओं कल्पनाओं और वासनाओं से ग्रसित जीवन में और सरल, स्वतंत्र, शांत और निर्विकार जीवन में कितना अंतर है।

बहुत से मनुष्य अपनी मेज़ों, अलमारियों और कमरों को फ़िज़ूल और बेकार चीज़ों से भर देते हैं। इनके कारण कभी कभी तो मकान और कमरे की ठीक ठीक सफ़ाई भी नहीं हो पाती और न ठीक तौर से झाड़ू ही लग पाती है। यहां तक कि मकानों में सफ़ाई न होने के कारण खटमल, मच्छड़ तथा हैज़े, प्लेग वग़ैरह के कीड़े पैदा हो जाते हैं, तब भी लोग चाहे चीज़ कैसी ही फ़िज़ूल और बेकार हो उसे घर से निकालना नहीं चाहते। डाक्टर तक भले ही कहें कि सफ़ाई के लिए इन चीज़ों को निकाल देना चाहिए, परंतु वे नहीं मानते। उनका ख्याल है कि पड़ी हुई चीज़ कभी न कभी काम दे ही जाती है अथवा यदि यह चीज़ किसी दूसरे के यहां न हुई तो उस समय इसका

मूल्य बढ़ जाएगा। कोई २ चीज़ तो केवल पुरानी घटनाओं को याद दिलाने के लिये ही रक्खी जाती हैं।

सुन्दर, सुहावने और व्यवस्थित घर में कभी कोई फ़िजूल और बेकार चीज़ देखने में नहीं आयेगी जिससे कूड़ा कर्कट फैलता हो और पीछे से जिसके कारण दुःख और कष्ट उठाना पड़ता हो। रोज़ कमरों की सफ़ाई की जाती है। कूड़ा कर्कट फेंक दिया जाता है अथवा जला दिया जाता है। ऐसे मकानों में सदा हवा और रोशनी आती रहती है और बीमारी का कभी नाम भी सुनने में नहीं आता।

इसी प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क में बहुत से व्यर्थ और गंदे विचार भी होते हैं जिनमें वह सदैव डूबा रहता है और जिनके त्याग से उसे दुःख होता है। अतृप्त इच्छाओं, कुत्सित अभि-लाषाओं, अस्वाभाविक सुख की याचनाओं, भूत, प्रेत, देवी देवता, मन्त्र जन्त्र के परस्पर विरोधी विश्वासों से मन को तनिक भी शांति नहीं मिलती। ब्रह्म, माया, द्वैत, अद्वैत, उपादान कारण, निमित्त कारण, हेय, उपादेय आदि विचार कल्पनाओं से मन इस प्रकार वेष्ठित होजाता है कि फिर उसमें जीवन की सरल, सुन्दर और वास्तविक घटनाओं के समझने की शक्ति नहीं रहती और सारा ज्ञान दिखावटी शब्दाडम्बर के नीचे दब जाता है।

जीवन की सादगी इसी में है कि इस प्रकार की व्यर्थ की इच्छाओं, कल्पनाओं और शब्दाडम्बर का त्याग कर दो और केवल उन्हीं वस्तुओं का विचार करो जो कि स्थाई और आवश्यक हैं।

इस जीवन में कौनसी वस्तु स्थाई है और कौनसी आवश्यक

है? मेरी समझ में केवल भलाई ही स्थिर है और सदाचार ही आवश्यक है। यदि मनुष्य अपने हृदय से सम्पूर्ण विकारों को निकाल दे और अपने जीवन के कुछ सिद्धान्त करले तो उसका जीवन इतना सरल हो जायगा कि वह जीवन की कठिन समस्याओं को भी समझ सकता है और सुख प्राप्त कर सकता है। संसार में जितने बड़े २ महा पुरुष हुए हैं उन सबने इसी प्रकार जीवन को सफल बनाया है। महात्मा बुद्ध ने आठ धर्मों का उपदेश दिया है और कहा है कि इन आठों धर्मों का सम्यक रीति से पालन करने से मनुष्य को ज्ञान प्राप्त हो सकता है। फिर उन्होंने आठों धर्मों का एक शब्द में निरूपण किया है और वह शब्द 'अहिंसा' 'दया' है। महात्मा कानफूसस ने भी पांच धर्मों का उपदेश दिया है और कहा है कि इनके अनुसार जीवन व्यतीत करने से मनुष्य को पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। फिर उन्होंने उन पांचों का सारांश एक शब्द 'दया' और 'सहानुभूति' बतलाया है। महात्मा ईसा ने सम्पूर्ण जीवन का रहस्य एक शब्द प्रेम में बतला दिया है। अहिंसा, दया, प्रेम, और सहानुभूति ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। एक अर्थ के द्योतक है। यद्यपि ये शब्द बहुत ही सरल हैं, परन्तु मुझे एक भी मनुष्य ऐसा दिखलाई नहीं देता जो इनको अच्छी तरह समझता हो कारण जो कोई इनको अच्छी तरह समझेगा वह अवश्य ही इनके अनुसार प्रवृत्ति भी करेगा। वह पूर्ण, पवित्र और ज्ञानी होगा और उसमें किसी भी बात की कमी नहीं होगी। उसी समय मनुष्य को इस बात का पता लग सकता है कि मेरे अन्दर कितने मानसिक विकार भरे हुए हैं और मुझे किस

प्रकार उन्हें दूर करना चाहिए जब कि वह सच्चे दिल से अपने जीवन को महात्माओं के बतलाए हुए मार्ग पर लगाता है। मानसिक विकारों को दूर करने में मनुष्य को कष्ट उठाना पड़ता है। उससे उसके श्रद्धान पर, धैर्य पर, सन्तोष पर, दयालुता पर, नम्रता पर और बुद्धि पर भारी प्रभाव पड़ता है और यदि वह अपने सिद्धांत पर दृढ़ जमा रहता है तो उसका जीवन पवित्र और सरल होजाता है और वह परमानन्द का लाभ करता है। अपने मन को, अपने गृह को अथवा अपनी दूकान को नियम पूर्वक चलाना कोई आसान बात नहीं है, किन्तु जिसने नियमबद्ध कार्य करना सीख लिया है वह सुख और शांति का अनुभव करता है।

जितने भी जड़ वा मन सम्बन्धी कठिन और जटिल प्रश्न हैं वे कतिपय सिद्धांतों पर अवलम्बित हैं और उन्हीं के द्वारा वे सरल हो सकते हैं। बुद्धिमान मनुष्य अपने जीवन को थोड़े से सरल नियमों के अनुसार बनाता है। जिस मनुष्य का जीवन प्रेम के सिद्धांत पर अवलम्बित है वह प्रत्येक वस्तु में ईश्वरत्व देखता है। ऐसे मनुष्य के विचार, शब्द और कार्य बहुत ही सामयिक होते हैं। उसको किसी बात में भी कोई विरोध नहीं जान पड़ता।

एक बार एक विद्वान ने एक बौद्ध साधु से जिन्होंने ज्ञान और पवित्रता में बड़ी ख्याति प्राप्त करली थी, पूछा कि बौद्ध धर्म में सब से गूढ़ और महत्व की बात क्या है? साधु ने उत्तर दिया कि बौद्ध धर्म में सब से बड़ी बात केवल यह है कि बुराई को त्यागो और भलाई को ग्रहण करो। इस पर विद्वान ने कहा कि मैं आप से यह नहीं पूंछता हूं। इसको तो तीन

वर्ष का बालक भी जानता है । मेरा प्रश्न यह है कि बौद्ध धर्म में सबसे गूढ़ और गहन तत्व क्या है ? साधु ने कहा कि सब से गूढ़ और गहन तत्व केवल यही है कि बुराई से बचना चाहिये और भलाई को ग्रहण करना चाहिए। सम्भव है कि तीन वर्ष का बालक इसको जानता हो, परन्तु बड़े २ बूढ़े लोग इसका अभ्यास नहीं कर सकते हैं । ग्रन्थकार का कहना है कि वह विद्वान न तो वास्तविक पदार्थ को ही जानना चाहता था और न सत्यता को ही, किन्तु वह ज्ञान के एक ऐसे गहन तत्व को जानना चाहता था जिससे वह अन्य सूक्ष्म तत्वों को निकाल सकता और उसके द्वारा अपनी प्रखर बुद्धि का चमत्कार संसार को दिखा सकता ।

एक बार एक नैयायिका ने बड़े अभिमान के साथ मुझसे कहा कि हमारा तत्त्वज्ञान और हमारी फ़िलासफ़ी संसार भर में सब से अधिक उत्तम और पूर्ण है । जब मैंने उसको समझने के लिये अपनी बुद्धि लगाई और उससे जीवन के जटिल प्रश्नों को हल करना चाहा, तब मुझको उसकी कठिनता का बोध हुआ । तभी से मुझे इस बात का ज्ञान होगया कि शब्दजाल के चक्कर में पड़ना और ऐसे न्याय के समझने में शक्ति और समय का दुरुपयोग करना है। इनका निश्चित तत्वों के समझने में और सद्गुणों के अभ्यास करने में उपयोग किया जाए तो तो कैसा उत्तम हो ।

परन्तु गर्व, अहंकार और मिथ्याभिमान को बुरा बतलाने से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि मैं मूर्खता और अज्ञानता को अच्छा समझता हूँ और विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता को बुरा समझता हूँ । विद्वत्ता बड़ी उत्तम-वस्तु है, इसमें तनिक भी सन्देह

नहीं, परन्तु यदि मनुष्य ने ज्ञान प्राप्त करके कोई विशेषता न दिखलाई अथवा अभिमानी होगया, तब तो निश्चय से ज्ञान प्राप्त करना बुरा है; परन्तु यदि मनुष्य इसको उन्नति का मार्ग समझे तो यह वास्तव में बड़ी ही उत्तम वस्तु है। ओछे से ओछे विचार वाला, मनुष्य भी इससे भलाई और उपकार कर सकता है। बौद्ध साधु उक्त विद्वान से किसी प्रकार भी विद्वत्ता में कम नहीं था, किंतु सादगी और बुद्धिमत्ता में उससे भी बढ़ा हुआ था। बुद्धिमान मनुष्य शब्दजाल को छोड़कर घटाकाश, पटाकाश में न पड़कर सद्गुणों को प्राप्त करते हैं और उन्हीं का अभ्यास करते हैं। ऐसा करने से उनका जीवन सरल, स्वाधीन और सुखप्रद हो जाता है और वे ईश्वरीय ज्ञान का अनुभव कर लेते हैं।

जो मनुष्य इस सादगी के मज़े को चखना चाहते हैं उन्हें अपनी विचार शक्ति को निरन्तर बढ़ाना चाहिए, परंतु विचार किसी उत्तम और उच्च उद्देश्य के लिए होने चाहिए और उनसे जीवन के कठिन और जटिल प्रश्नों को हल करना चाहिए। विचार शक्ति का कभी भूलकर भी दुरुपयोग मत करो। व्यर्थ के शब्दाडम्बर में न पड़ो।

सरल और सादा जीवन अपनी प्रत्येक अवस्था और प्रत्येक भाग में सरलता के लिए रहता है कारण कि जो मन ऐसे जीवन पर शासन करता वह दृढ़ और पवित्र होता है और सत्य पर स्थिर और निर्धारित होता है। हानि पहुंचाने वाले बहुमूल्य खानों, व्यर्थ के चमकीले भड़कीले कपड़ों, फ़िज़ूल की डींग मारना, काम में सच्चाई का न होना और विचारों में केवल शब्दाडम्बर का होना, कल्पनाएं मात्र करना इत्यादि

बातों का एक दम त्याग कर देना चाहिए कि जिससे सद्गुण अच्छी तरह समझ में आ जाएँ और दृढ़तापूर्वक वे ग्रहण किए जा सकें। एक बार तुम जीवन के कर्त्तव्यों को निःस्वार्थ भाव से कर डालो। स्वार्थ को बिलकुल अपने मन से निकाल डालो फिर तुम्हारे कार्यों में सत्य का प्रकाश दिखलाई देने लगेगा। जीवन के मुख्य मुख्य सिद्धान्त जिनसे अभी तक तुम अनभिज्ञ थे, तुमको स्पष्टतया ज्ञात हो जाएंगे और वह सत्य तुम्हें प्राप्त हो जाएगा जिसे सांसारिक विद्वान, कल्पना, तर्क और अनुसन्धान के द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं।

सरल हृदय, शुद्ध हृदय, धर्मात्मा और बुद्धिमान मनुष्य भविष्य और अज्ञात या अज्ञातव्य बातों के विषय में तनिक भी भयभीत और आशङ्कित नहीं होते हैं। उन्हें जिस समय जो कार्य करना होता है और जो कुछ उन्हें ज्ञात होता है उसी पर आरूढ़ हो जाते हैं। वे वास्तविक वस्तु को कल्पना के बदले में नहीं दे देते। वे भलाई ही को अपना एक मात्र रक्षक समझते हैं। सत्यता में उन्हें एक प्रकार की ज्योति दिखलाई देती है जिससे उन्हें जीवन की वास्तविकता का पता लग जाता है। सत्यता के प्रकाश से उन्हें भविष्य में भी ईश्वरीय माया दिखलाई देती है और इस लिए वे शांत और गम्भीर रहते हैं।

सरलता में किसी प्रकार की भी बाधा नहीं आती और कुछ ही काल में वह दृढ़ और सबल हो जाती है। शङ्का, माया, भय, सन्देह, अपवित्रता, निराशा और पश्चात्ताप इत्यादि अवगुण हृदय से निकल जाते हैं और स्वतन्त्र मनुष्य बल, दृढ़ता, शांति और पवित्रता को प्राप्त करके निर्भयता से कार्य करता है और स्वर्गीय सुखों का अनुभव करता है।

९—सद्विचार और शांति।
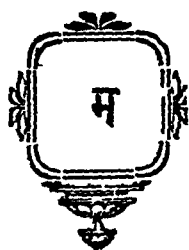
मनुष्य का जीवन आदतों का समूह है। आदतों का भला बुरा होना केवल मनुष्य के विचारों पर अवलम्बित है। मनुष्य विचारों से ही बना है, अतएव मनुष्य का परम कर्त्तव्य है, कि वह अच्छे विचारों को ही अपने मन में स्थान दे। बुद्धिमान और मूर्ख मनुष्य में विशेषकर यही अन्तर है कि बुद्धिमान अपने विचारों को अपने वश में रखता है; परन्तु मूर्ख विचारों के आधीन हो जाता है। बुद्धिमान मनुष्य अपने विचारों को किसी उद्देश्य की पूर्ति में लगाता है और बाह्य वस्तुओं के कारण अपने ध्यान को नहीं हटने देता, परन्तु मूर्ख मनुष्य बाह्य वस्तुओं के देखने से, जो विचार उसके मनमें उत्पन्न होते हैं, कठपुतली की भांति उन्हीं के आधीन रहता है और क्रोधादि कषायों से अपने जीवन को नष्ट कर डालता है। प्रमाद और असावधानी से विचार करने से जिसको हम साधारणतया विचार शून्यता कहते हैं, असफलता का मुंह देखना पड़ता है; बना बनाया काम बिगड़ जाता है और दुःख उठाना पड़ता है। चाहे कितना ही प्रार्थनाएं करो, कितना ही पूजन पाठ करो और कितने ही दान पुण्य के कार्य करो, ये कदापि कुविचार की कमी को पूरा नहीं कर सकते हैं। केवल सुविचार ही पथभ्रष्ट जीवन को सुधार सकते हैं और केवल उसी समय सुख और

७-शान्ति और बल।

जिस मनुष्य में सत्यता पाई जाती है वास्तव में वह सदा शांत और गम्भीर रहता है। पवित्र मन और सत्यार्थ जीवन में उतावली, आवेश, चिंता और भय नाम को भी नहीं पाए जाते। आत्म-विजय से सदैव शांति मिलती है। शान्ति एक ऐसा प्रकाश है कि जिसके द्वारा मनुष्य के गुण देदीप्यमान हो जाते हैं। महात्माओं के मस्तक की प्रभा किरीटि की भांति शांति मनुष्य के सद्गुणों को प्रकाशमान कर देती है। जिस मनुष्य में शांति नहीं है उसकी सबसे बढ़ी हुई शक्ति भी वास्तव में निर्बलता की सूचक है। जो मनुष्य ज़रा सी विघ्न बाधाओं के आने पर अपने मन की शांति को खो देता है उसमें आत्मिक बल तो कहां, साधारण मानुषी बल भी नहीं कहा जा सकता। उसका दूसरों पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता, जो पाप में और लोभ और संकट के समय क्रोध में अन्धा होजाता है और अपने आप को बिलकुल भूल जाता है।

धर्मात्मा और सद्गुणी मनुष्य अपने को वश में रखते हैं और अपने आवेशों और मनोविकारों पर दृष्टि रखते हैं। इस प्रकार वे मन पर धीरे २ विजय प्राप्त करके शांति लाभ करते हैं। शांति प्राप्त करने से वे बल, प्रभाव और सुख को प्राप्त करते हैं।

जो मनुष्य अपने को वश में नहीं रख सकते, जो कषायों

बिना सुरक्षित नहीं रह सकते। बुद्धि में भी मानसिक आवेशों की भाँति अवगुण होते हैं। जिस प्रकार काम और भोगविलास सच्चे प्रेम के विरोधी होते हैं,उसी प्रकार वाकजाल के निरर्थक और पेचीले प्रश्न भी बुद्ध के विरोधी होते हैं। न्यायशास्त्र की बारीकियों और फिलासफी के गूढ़ तत्वों की छानबीन करने में और सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय पर विचार करने से चाहे तुम्हें भले ही आनन्द मिलता हो; परन्तु आत्मा को उस समय तक शांति नहीं मिल सकती है जबतक कि तुम अपने जीवन की घटनाओं में सदाचार और धर्माचरण का पालन नहीं करते। जिस प्रकार दिन में दूर २ तक आकाश में मंडलाकर शाम को गिद्ध अपने घोंसले में लौट आता है और उसी में सुख से रात बिताता है, उसी प्रकार तत्वज्ञानी को भी केवल सद्गुणों की चट्टान पर ही सुख वा शांति मिल सकती । व्यर्थ के शब्दाडम्बर और तर्क वितर्क में सुख लेश भी नहीं है।

मनको इसप्रकार सधाना चाहिए कि जिससे वह सदाचार के नियमों को भली भांति समझ सके और व्यवहार में उनका प्रयोग भी कर सके। इसकी शक्तियों को व्यर्थ के जटिल प्रश्नों के हल करने और गुलझथियों के सुलझाने में न लगाकर भलाई और ज्ञान प्राप्ति की ओर लगाओ । विचार करने वाले को अपने मनमें सद् और असद् की पहिचान कर लेना चाहिए। उसको अपने वास्तविक ज्ञान का पता लगा लेना चाहिए और जो कुछ भी वह जानता है इसका भी उसे ज्ञान होना चाहिए। उसे वास्तविक तत्वों और उनके विषय में लोगों की सम्मति को जानने तथा विश्वास और ज्ञान में और सत्य और मिथ्या में,

पहिचान करने की शक्ति होनी चाहिए। अपने मनकी प्रवृत्ति को ठीक करने के लिए जिससे सत्य को भली भांति जान सके और अपने जीवन को उत्तम और उच्च बना सके, मनुष्य को अपने मन की भूलों के निकालने में उस तार्किक से भी अधिक कठोर होना चाहिये जो दूसरो के मन की भूलों को निकालने में तनिक भी नहीं झिझकता । ऐसा करने से कुछ ही समय में उसको ज्ञात हो जायगा कि मेरा ज्ञान कितना क्षुद्र है, परन्तु उसको इस बात के जानने से दुःख न होगा वरन् हर्ष होगा कारण कि उसका यह थोड़ासा ज्ञान शुद्ध स्वर्ण के सदृश है। जिस प्रकार खानि में काम करनेवाला मनुष्य चमकीले हीरे के पाने के लिए हज़ारों मन मिट्टी को खोदकर फेंक देता है उसी प्रकार आत्मज्ञानी और विचारवान मनुष्य को सत्यता की प्राप्ति के लिए अपने मन से, सहस्त्रों प्रकार के मतों, विश्वासों और तर्क वितर्कों को निकाल डालना चाहिए।

वह ज्ञान जो इस प्रकार छान बीन करने से प्राप्त होता है, भलाई से इतना घनिष्ट सम्बन्ध रखता है कि वह कभी भी उससे पृथक नहीं हो सकता ! महात्मा सुकरात ने ज्ञान की खोज में भलाई को ढूढ निकाला था। अन्य बड़े बड़े ऋषि, मुनियों ने भी इसी का उपदेश दिया है। जब ज्ञान का भलाई से कुछ सम्बंध नहीं होता तो बुद्धि भी जाती रहती है। मनुष्य जिस बात का अभ्यास करता है उसीको वह जानता है। जिसका वह अभ्यास नहीं करता उसको नहीं जानता। चाहे मनुष्य प्रेम पर बड़े २ ग्रन्थ लिख डाले और चाहे वह प्रेम के उपदेश लोगों को सुना‑कर उनको प्रसन्न करदे; परन्तु यदि वह अपनी स्त्री के साथ

अथवा कुटुम्ब के साथ बुरा व्यवहार करता है और अपने शत्रु को घृणा की दृष्टि से देखता है तो समझना चाहिए कि वह प्रेम के विषय में कुछ भी नहीं जानता है । ज्ञानी मनुष्य के हृदय में एक ऐसा भाव गुप्त रूप से विद्यमान रहता है जो नैयायिकों और तार्किकों के व्यर्थ शब्दाडम्बर को दबा देता है। शांति का अनुभव केवल वही मनुष्य कर सकता है, जिसका हृदय शुद्ध है और घृणा और द्वेष से रहित है और जो सबके साथ प्रेम और प्रीति का व्यवहार करता है । दुष्ट और पापी मनुष्य के मुंह से निकला हुआ प्रेम का शब्द भी मूर्खता की वृद्धि करता है । केवल बहुत सी बातों के जान लेने का नाम ज्ञान नहीं है। ज्ञान में और उसमें बड़ा अन्तर है । वही ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान कहलाता है जिसका धर्म और सदाचार से सम्बन्ध। नम्रता बुद्धि को झूठे विचारों और थोथे अभिमान से बचाती है, परन्तु साथ में ज्ञान-चक्षु और अजेय शक्ति के साथ उसे युक्त भी कर देता है।

बुरे विचार वाला मनुष्य अपनी बुराइयों से पहिचाना जाता है और अच्छे विचार वाला मनुष्य अपनी भलाई से पहिचाना जाता है। दुःख और अशांति बुरे विचार करनेवाले मनुष्य का पीछा नहीं छोडती। उसे स्थाई सुख कहीं नहीं मिलता । वह समझता है कि दूसरे लोग मुझे दुःख पहुँचा सकते हैं, धोका दे सकते हैं, मेरा अपमान कर सकते हैं और अन्त में मेरा सत्यानाश भी कर डालेंगे । वह इस बात को नहीं जानता है कि सद्गुणों में रक्षा करने की कितनी बड़ी शक्ति में जलता रहता है। जब कोई मनुष्य उसकी निंदा करता है ।

आत्म-रक्षा के लिये वह शंका, घृणा, क्रोध, कोप और बदले का सहारा लेता है और अपने ही अवगुणों की अग्नि में जलता रहता है। जब कोई मनुष्य उनकी निन्दा करता है तो वह भी जोश में आकर उसकी निंदा करने लगता है। यदि कोई मनुष्य उसको दोषी ठहराता है तो वह भी दूसरों को दोषी ठहराने लगता है और यदि कोई उस पर वार करता है तो वह भी बदले में उस पर भयानकता से वार करता है। बुरे विचार वाला मनुष्य सदा यही कहता रहता है कि मेरे साथ अन्याय और अत्याचार किया गया है और इसी कारण वह क्रोध में भरा रहता है और दुःख भोगा करता है। ज्ञान रहित होने से और भलाई बुराई की पहिचान न होने से उसे इस बात का ज्ञान नहीं होता कि मैं अपने दुःखों का कारण आप हूं। मैं जो कुछ दुःख उठा रहा हूं वह अपनी ही दुष्टता से न कि पड़ोसियों की दुष्टता से।

अच्छे विचार वाले मनुष्य को अपनी रक्षा की स्वप्न में भी चिन्ता नहीं होती। दूसरों के बुरे कामों से उसे लेशमात्र भी दुःख नहीं होता। उसके हृदय में कभी यह विचार नहीं आता कि अमुक मनुष्य ने मुझे दुःख दिया। उसको इस बात का दृढ़ विश्वास है कि मेरे बुरे कामों के सिवाय और कोई मुझे दुःख नहीं पहुंचा सकता।

वह अपनी भलाई अपने हाथ में समझता है और यह भी जानता है कि मेरी शांति मेरे सिवाए कोई भंग नहीं कर सकता। सद्गुण उसके रक्षक होते हैं और बदले का उसके मन में विचार भी नहीं आता है। वह दृढ़ता से शांति का अनुभव

करता है और क्रोध को अपने हृदय-मंदिर में घुसने नहीं देता। लोभ लालच का उसके मन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। सदगुणी होने से वह बल और सुख को प्राप्त करता है।

अच्छे विचार रखने वाला मनुष्य अन्य मनुष्यों और पदार्थों के प्रति अच्छे विचार रखता है और अपनी मनोवृत्ति को प्रेममय बना लेता है। मनोवृत्ति का प्रेममय होना त्याग नहीं है, किन्तु बुद्धिमानी है प्रेम पथ के अनुगामी मनुष्य को जीवन की वास्तविकता का पता लग जाता है। वह पदार्थों को उनके वास्तविक स्वरूप में देखता है। वह जीवन की दैनिक घटनाओं को नहीं भूलता, किन्तु उन्हें सृष्टि नियम के अनुसार देखता है। वह वस्तुओं के पारस्परिक सम्बन्ध को जान जाता है। उसे संसार में सर्वत्र न्याय का ही साम्राज्य दिखलाई देता है। वह दुनियां में रहता है और नित्य लोगों को लड़ते झगड़ते देखता है, परन्तु उसे लडाई झगड़ों से कुछ भी मतलब नहीं रहता। वह पक्षपात से बिलकुल रहित होता है। उसका व्यवहार सबके साथ एकसा होता है। वह किसी का झूठा पक्ष नहीं लेता। उसे इस बात का पूर्ण विश्वास होता है कि संसार में अन्त में भलाई की ही जय होती है।

भलाई की कभी पराजय नहीं होती। न्याय की कभी अवहेलना नहीं की जा सकती। जो कुछ भी मनुष्य करता है, न्याय उस पर शासन करता है। न्याय का सिंहासन हिलाया भी नहीं जा सकता, उसे गिराने की तो बात दूर रही। सद्-विचार वाले मनुष्य को इसी के द्वारा स्थाई सुख मिलता है। धर्मात्मा होने से वह संसार को धर्म पर स्थित देखता है। प्रेम

को प्राप्त करके वह अनन्त प्रेम को देखता है और बुराई को दूर करके वह भलाई के महत्व को जानता है ।

केवल यही मनुष्य सद् विचार करने वाला है जिसका हृदय विशुद्ध है, जो राग, द्वेष, काम क्रोध और अभिमान से रहित है, जो संसार को पवित्र और निर्दोष नेत्रों से देखता है, जिसके हृदय में कट्टर से कट्टर शत्रु के देखने पर भी शत्रुता के भाव उत्पन्न नहीं होते, किंतु केवल दया और क्षमा के भाव ही आते है, जो उन बातों पर जिह्वा भी नहीं उठाता जिनका उसे ज्ञान नहीं है और जिसका हृदय सदैव शांति का आस्वादन किया करता है। इस प्रकार लोगों को मालूम हो सकता है कि उसके विचार सत्य पर स्थित हैं अर्थात् उसके हृदय से ईर्ष्या द्वेष का भाव बिलकुल जाता रहा है। बुराई उसके मन से निकल गई है और जिससे पहले वह घृणा करता था अब वह उससे प्रेम करता है ।

मनुष्य चाहे विद्वान हो, परन्तु यदि वह बुद्धिमान नहीं है तो वह सद्विचारक नहीं कहा जा सकता । विद्या के बल से मनुष्य बुराई को नहीं जीत सकता और न अधिक पढ़ने से वह अपने पापों और दु.खों को ही दूर कर सकता है । केवल अपने को जीतने से ही बुराई को जीता जा सकता है और धर्माचरण करने से ही मनुष्य पापों और दुःखों को नाश कर सकता है ।

विजयी जीवन के अधिकारी चतुर, विद्वान् और आत्म-विश्वासी लोग नहीं हैं, किंतु वे लोग हैं जो पवित्र, धर्मात्मा और बुद्धिमान हैं । चतुर और विद्वान् लोग जीवन के किसी

विशेष कार्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं, किंतु धर्मात्मा और बुद्धिमान् पुरुष प्रत्येक कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त करते हैं, जिसके सामने असफलता भाग जाती है ।

धर्म नहीं डिग सकता। धर्म में किसी प्रकार की भी वाधा नहीं डाली जा सकती। धर्म को कभी नहीं हरा सकते। जो मनुष्य धर्मात्मा है, सद्व्यवहार करता है और जिसका मन सत्यनुगामी है केवल वही जीवन समर में विजय लाभ करता है, कारण कि धर्म की सदा जय होती है। धर्म की वेल हरी रहती है। कहा भी है कि 'य तो धर्मस्ततो जयः'। धर्म और सत्य ये ही सृष्टि के दो स्तम्भ हैं ।

७-शान्ति और बल।

जिस मनुष्य में सत्यता पाई जाती है वास्तव में वह सदा शांत और गम्भीर रहता है। पवित्र मन और सत्यार्थ जीवन में उतावली, आवेश, चिंता और भय नाम को भी नहीं पाए जाते। आत्म-विजय से सदैव शांति मिलती है। शान्ति एक ऐसा प्रकाश है कि जिसके द्वारा मनुष्य क गुण देदीप्यमान हो जाते हैं। महात्माओं के मस्तक की प्रभा किरीटि की भांति शांति मनुष्य के सद्गुणों को प्रकाशमान कर देती है। जिस मनुष्य में शांति नहीं है उसकी सबसे बढ़ी हुई शक्ति भी वास्तव में निर्बलता की सूचक है। जो मनुष्य ज़रा सी विघ्न बाधाओं के आने पर अपने मन की शांति को खो देता है उसमें आत्मिक बल तो कहां, साधारण मानुषी बल भी नहीं कहा जा सकता। उसका दूसरों पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता, जो पाप में और लोभ और संकट के समय क्रोध में अन्धा होजाता है और अपने आप को बिलकुल भूल जाता है।

धर्मात्मा और सद्गुणी मनुष्य अपने को वश में रखते हैं और अपने आवेशों और मनोविकारों पर दृष्टि रखते हैं। इस प्रकार वे मन पर धीरे २ विजय प्राप्त करके शांति लाभ करते हैं। शांति प्राप्त करने से वे बल, प्रभाव और सुख को प्राप्त करते हैं।

जो मनुष्य अपने को वश मे नहीं रख सकते, जो कषायों

और मनोवृत्ति के आधीन हो रहे हैं और जो पापमय सुखों के पीछे मारे मारे फिरते हैं, ऐसे मनुष्य कभी विजयी जीवन के आनन्द का लाभ नहीं उठा सकते और शांति के सुन्दर और मनोहर हीरे को न तो समझ ही सकते हैं और न प्राप्त ही कर सकते हैं, चाहे ऐसे मनुष्यों की जिह्वा पर शांति के शब्द भले ही रहते हों, परन्तु हृदय से वे शांति के इच्छुक नहीं हैं।

शांत मनुष्य को कभी ऐसा समय नहीं आता कि जब उसे शोक और पश्चात्ताप करना पड़े। इस अवस्था में न तो ऐसी बढ़ती ही होती है जिसका परिणाम दुःख और शोक है और न ऐसे अधम कार्य ही होते हैं जिनसे कष्ट उठाना पड़े और आत्म-सम्मान और स्वाभिमान जाता रहे। ये सब बातें छूट जाती हैं और केवल सत्य रह जाता है। जहां सत्य है वहां शांति है। शांत जीवन में सदा सुख का प्रभाव रहता है। जिस मनुष्य का मन और इन्द्रियां उसके वश में नहीं हैं, उसे जो कार्य कठिन और दुःखदाई मालूम पड़ते हैं, शांत प्रकृति मनुष्य को वे ही आनन्द प्रद जान पड़ते हैं। सच तो यह है कि शांत जीवन में कर्त्तव्य शब्द के अर्थ ही पलट जाते हैं। सुख और कर्त्तव्य में कोई भेद नहीं रहता। शांत प्रकृति मनुष्य सुख और कर्त्तव्य को अलग अलग नहीं कर सकता। वह जो काम करता है उसी में सुख का अनुभव करता है। कर्तव्य कर्म के करने में दुःख उन्हें होता है जो इन्द्रिय जनित सुखों और क्षणिक भोग विलासों के दास होते हैं।

शांति का प्राप्त करना कठिन है कारण कि प्रायः मनुष्य उन नीच मनोवृत्तियों में फँसे रहते हैं जिनसे क्षणिक सुख

मिलता है। कभी २ तो मनुष्य दुःखों को भी मूर्खता से सुख ही समझ बैठते हैं। यद्यपि शांत का प्राप्त करना कठिन है किंतु उसकी प्राप्ति का मार्ग बहुत ही सरल है । उन आवेशों और विकारों को त्याग दो जो शांति के शत्रु हैं और अपने में उन गुणों को दृढ़ करलो जो किसी वाह्य परिस्थिति के बदलने से अपना रूप नहीं बदल सकते और न जिन पर किसी प्रकार की शक्ति अपना असर डाल सकती है । ऐसा करने से तुम्हें पूर्ण शांति और स्थाई सुख की प्राप्ति हो सकती है।

जो मनुष्य अपने ऊपर शासन कर सकता है और दिन प्रति दिन मनको शांत करने के लिये, आत्म विजय के लिये और उत्कृष्ट गम्भीरता के लिए यत्न करता रहता है वही सुख और शांति प्राप्त कर सकता है। मनुष्य जितना आत्म संयमी होगा उतना ही वह स्वयं सुख का अनुभव करेगा और दूसरों के लिये सुख का कारण होगा । आत्म-संयम निरन्तर के अभ्यास से ही प्राप्त हो सकता है। मनुष्य को अपनी निर्वल-ताओं के दूर करने के लिये प्रतिदिन उद्योग करना चाहिये। उसे उनको समझना और अपने में से दूर करना सीखना चाहिये। यदि मनुष्य निरन्तर इस बात का उद्योग करता रहे तो वह धीरे २ विजय प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार की विजय से उसकी शांति में और अधिक वृद्धि होगी और वह पहिले से अधिक योग्य सुखी और बलवान हो जायगा, अपने कर्त्तव्य कर्म को निर्दोष रीति से पालन कर सकेगा और वाह्य घटनाओं का धीरता से सामना कर सकेगा। परन्तु यदि वह मनुष्य इस जीवन में पूर्ण शांति न भी प्राप्त करे, तो भी वह इतना पवित्र,

और दृढ़ होजायगा कि अपने जीवन के युद्धों को निर्भयता से कर सकेगा और मन को वश में रखने के कारण मृत्यु के समय संसार को अधिक शांति के साथ छोड़ सकेगा।

अपने को निरन्तर वश में रखने से मनुष्य को मन की गूढ़ और पेचीली बातों का ज्ञान होजाता है और यही वह आत्म-ज्ञान है जिससे मनुष्य शांति का रूप धारण कर लेता है। बिना आत्म ज्ञान के मानसिक सुख कदापि नहीं मिल सकता। जो मनुष्य काम क्रोधादि आवेशों के वशीभूत रहते हैं वे उस पवित्र स्थान पर कभी नहीं पहुंच सकते जहां शांति का साम्राज्य है। निर्बल मनुष्य उस सवार के सदृश हैं जो तेज़ घोड़े पर चढ़कर उसकी रास को ढीला छोड़ देता है। चाहे जिधर को घोड़ा जाए उधर ही चला जाता है, परन्तु बलवान मनुष्य उस सवार के सदृश है जो तेज़ घोड़े पर चढ़कर उस को अपनी इच्छा से जिधर चाहे चलाता है। वह घोड़े के वश में नहीं होता किंतु घोड़ा उसके वश में होता है।

जिस मनुष्य ने अपने मन को शुद्ध कर लिया है और जिससे स्वयं उसको तथा संसार को सुख पहुंचता है, शांति उसके जीवन का मुकुट है। भय, शंका और निर्बलता में पड़े हुए मनुष्यों के दुःखित हृदयों में शांत जीवन से ही शांति उत्पन्न हो सकती है। इन निर्बल मनुष्यों के कांपते हुए पैरों में शांत मनुष्यों से ही बल मिलता है और दुःख और विपत्ति के समय इनसे ही सुख और सांत्वना मिलती है कारण कि जो मनुष्य आत्म विजय कर लेते हैं वे ही दूसरों की सहायता कर

सकते हैं। जिन्होंने अपनी आत्मा की निर्बलता को दूर कर दिया है वे ही दूसरे निर्बल पथिकों को सहारा दे सकते हैं।

मन की वह शांति जो विघ्न बाधाओं के समय भंग नहीं होती और दूसरों के दोषारोपण करने के समय जिसमें कोई विकार नहीं आता वह उच्च आत्मिक बल से प्राप्त होती है। यह शांति ज्ञान और विवेक की सूचक है। शांत मन ही उच्च मन है। उसी मनुष्य में सभ्यता और दृढ़ता आदि सद्गुण पाए जाते हैं जो गम्भीरता को हाथ से नहीं जाने देता और जो दूसरों के दोषारोपण और अपमान करने पर भी शांति से विचलित नहीं होता। इस प्रकार की शांति आत्म-संयम का एक मनोहर पुष्प है। यह पुष्प बड़े धैर्य और श्रम से मिलता है। इसके लिए अनेक दुःखों की ज्वाला में से होकर गुज़रना और मन को पवित्र करना पड़ता है।

शांत मनुष्य सुख और ज्ञान के स्रोत को अपने हृदय में देख लेता है और यह स्रोत ऐसा है कि जो कभी नहीं सूखता। उसकी शक्तियां पूर्णतया उसके वश में होती हैं और उन शक्तियों की कोई सीमा नहीं होती। जिस ओर भी वह अपनी शक्तियों को लगा देता है वहीं बल, सौंदर्य और मौलिकता का परिचय देता है और उसका कारण यह है कि अब वह वस्तुओं के विषय में केवल सम्मतियों पर विचार नहीं करता किन्तु उनको उनके वास्तविक स्वरूप में देखता है और उसी के अनुसार उनका उद्योग करता है। वह सम्मतियों को निरी सम्मतियां ही समझता है और उनका कोई विशेष मूल्य नहीं

समझता। वह अपनी झूठी बड़ाई करना छोड़ देता है और नियमों का पालक बनकर प्रकृति और ब्रह्मांड के रूप में मिल जाता है। स्वार्थ से उसका बल कम नहीं होता और अहंकार से उसकी शक्तियों में बाधा नहीं आती। एक प्रकार से अब वह किसी वस्तु को भी अपनी नहीं समझता। वह अपने गुणों को भी सत्य के ही गुण बतलाता है। वह संसार की शक्ति का ज्ञानवान शस्त्र बन जाता है जिसके द्वारा संसार की स्थिति का कार्य होता है। अब वह अधम नीच और तुच्छ जीव नहीं रहता कि जो अपने स्वार्थ के लिये ही पाप कर्दम में डूबा रहे। स्वार्थ के छोड़ देने से वह लोभ, लालच, दुःख, कष्ट और भय को भी छोड़ देता है। वह शांति के साथ अपने कार्यों को करता है और धैर्य के साथ उनके परिणामों को देखता रहता है। उसमें अब किसी भी बात की कमी नहीं है। वह अपने कार्यों को बड़ी योग्यता के साथ करता है और उनकी भलाई बुराई को पहिले से ही देख लेता है। वह अन्धों की भांति कार्य नहीं करता और न वह भाग्य, अवसर अथवा दूसरों की कृपा पर ही भरोसा करता है। अर्थात् वह कभी यह विचार अपने मन में नहीं लाता कि भाग्य में होगा अथवा उनकी कृपा होगी अथवा अवसर आयेगा तो मिलही जायगा। वह दूसरों के भरोसे पर कभी काम नहीं करता। जो कुछ भी वह करता है अपने ही बल पर करता है।

शांत मनुष्य का मन स्वच्छ निर्मल जल की भांति है जिसमें जीवन और जीवन से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं का स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्ब पड़ता है। इसके विपरीत अशांत मनुष्य का

मन मैले गदले जल की भांति है जिसमें वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप का कुछ भी पता नहीं चलता। जिस मनुष्य ने स्वार्थ की तिलांजली देकर अपने मन को शुद्ध कर लिया है वह जिस समय ध्यानावस्थित होता है अपने भीतर सम्पूर्ण ब्रह्मांड को उसके वास्तविक रूप में देखता है। उस समय उसे सृष्टि की पूर्णता का भी ज्ञान हो जाता है और सर्वत्र नियम और समता को देखता है, यहां तक कि जिन वस्तुओं को संसार अन्याय रूप कहता है और जिन्हें स्वयं वह भी पहले अपने दुःख और क्लेश का कारण समझता था; अब वह उनको वैसा नहीं समझता किंतु उन्हें अपने पूर्वोपार्जित कर्मों का फल मानता है और प्रसन्नता पूर्वक उन्हें सहन करता है। इस प्रकार शांति से उसके बल और ज्ञान की वृद्धि होती है।

जिस काम में अस्थिर और अशांत मनुष्य को असफलता होती है, उसमें शांत मनुष्य को सफलता होती है। जिस मनुष्य ने अपने अभ्यांतर विकारों और मनस्तापों को दूर कर दिया है वह बाह्य में किसी भी भय और आपत्ति से नहीं डरता। जिसने अपने मन पर विजय प्राप्त करली है वह बाह्य वस्तुओं पर भी अवश्य जय प्राप्त कर सकेगा। शांत मनुष्य कठिनाई को अच्छी तरह से समझता है और उसके सुलझाने का भी पूर्ण प्रयत्न करता है। अशांत मनुष्य को यदि मन रहित और ज्ञान शून्य कहा जाए तो अनुचित न होगा, कारण कि वह स्वार्थ के मारे अंधा हो जाता है और उसको अपना मार्ग नहीं सूझता। उसे केवल दुःख और भय ही मालूम होता है। शांत मनुष्य अपने शक्ति बल से प्रत्येक घटना का सामना कर सकता है।

उसे किसी बात से भय नहीं होता। न उसे किसी बात के लिए तैयारी करनी पड़ती है और न कोई वस्तु उसके दृढ़ और प्रबल मन को ही हिला सकती है। जहां कहीं भी वह अपना कर्तव्य समझ कर काम करता है उसकी शक्ति प्रगट हो जाती है और उसके निःस्वार्थ मन के गुप्त बल का भी पता लग जाता है। सांसारिक वा आध्यात्मिक जिस काम को भी वह करेगा उसे पूर्ण शक्ति और ज्ञान के साथ करेगा।

शांति से यह अभिप्राय है कि मन सम्पूर्ण विकार निकल कर वह शुद्ध और पवित्र हो गया है और पूर्ण रूप से स्थिर हो गया है। सर्व प्रकार की मनोवृत्तियां जो पहले दुःखदायक थीं और विपरीत दिशाओं में बही चली जाती थीं, अब एक मुख होकर एक ही महान उद्देश्य की पूर्ति की ओर लग गई हैं। इससे यह तात्पर्य है कि सर्व प्रकार की कषाएं और वासनाएँ दूर हो गई हैं, बुद्धि निर्मल हो गई है और इच्छा ने परमेश्वरीय इच्छा का रूप धारण कर लिया है, अर्थात् अब उसमें से स्वार्थ भाव बिलकुल निकल गया है और वह सब के साथ भलाई और परोपकार करने में लगी हुई है।

जब तक मनुष्य पूर्णतया शांत नहीं हो जाता; तब तक वह पूर्ण विजयी भी नहीं हो सकता। जब तक छोटी छोटी बाह्य वस्तुएँ उसे सताती रहती हैं तब तक उसकी बुद्धि को कच्चो ही समझना चाहिए, और उसके हृदय को अशुद्ध और मलिन ही जानना चाहिए। जब तक मनुष्य अपने को धोका देता रहता है और अपनी बड़ाई करना नहीं छोड़ता, तब तक वह जीवन पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता। उसे सचेत हो जाना चाहिए और

भली भांति समझ लेना चाहिये कि उसके पाप, दुःख और शोक सब उसी के पैदा किए हुए हैं और जब तक वह पूर्ण और उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त नहीं कर लेगा, तब तक वे उसका पीछा नहीं छोड़ेंगे। उसे यह भी जान लेना चाहिए कि मुझे जो कुछ दुःख और विपत्ति उठानी पड़ रही है, उनका कारण मेरे ही पाप हैं दूसरों के नहीं। जिस प्रकार लोभी और कृपण मनुष्य धन की लालसा रखता है और उसकी प्राप्ति के लिए रात दिन यत्न करता रहता है, उसी प्रकार उसे शांति के लिए यत्न करना चाहिए और जब तक पूर्ण शांति न मिल जाए बराबर प्रयत्न करते रहना चाहिए। इस प्रकार उद्योग करने से उसकी विद्या, बुद्धि, शक्ति और शांति सब की वृद्धि होगी और उसकी आत्मा में शांति वैसे ही आ जाएगी, जैसे सवेरे के समय फूलों में ओस। जहां शांत मन है वहां बल और शांति का साम्राज्य है, प्रेम और ज्ञान है और वहीं पर वह है जिसने अपने आपे के विरुद्ध सैकड़ों युद्ध किये हैं और जिसने गुप्त रूप से कठिन श्रम करते हुए अपनी निर्बलताओं पर विजय लक्ष्मी प्राप्त की है।

७–ज्ञान और श्रेष्ठता।
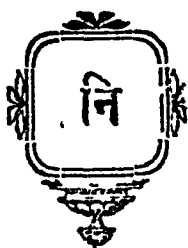
निरंतर भलाई करते रहने से अन्त में एक ऐसा समय आ जाता है कि जब मन में ब्रह्मज्ञान का प्रकाश हो जाता है जिसके बल से मनुष्य वस्तुओं में कार्य कारण के सिद्धान्त को भली भांति समझने लगता है। एक बार इस ब्रह्मज्ञान के प्राप्त हो जाने से मनुष्य भलाई करने में दृढ़ हो जाता है और लोभ लालच के आक्रमणों से भी तनिक नहीं हिलता, किन्तु संसार का उपकार करने के लिये अपने कार्य में स्थिर हो जाता है।

जब भलाई से बुद्धि परिपक्व हो जाती है तब सर्व प्रकार के लोभ लालच जाते रहते हैं और बुराई का होना असंभव हो जाता है। जब मनुष्य को प्रति दिन के जीवन में कार्य कारण का सम्बंध दीखने लगता है, तब फिर वह कभी बुराई की ओर नहीं झुकता। उसकी नीच राक्षसी वृत्तियां सदैव के लिए नष्ट हो जाती हैं।

जब तक मनुष्य उन नियमों को भली भांति नहीं समझ लेता, जिन पर जीवन का आधार है, तब तक चाहे वह कितनी ही बार अपने गुणों को प्रगट करे, तो भी वह भलाई और सदाचार में दृढ़ नहीं रह सकता और अपने अभीष्ट स्थान को प्राप्त नहीं कर सकता। जब तक मनुष्य पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त कर लेता, तब तक उसे भलाई बुराई की पहिचान नहीं हो सकती

और न वह अच्छे बुरे कामों के परिणामों को ही जान सकता है। पूर्ण ज्ञान के न होने से मनुष्य लालच के समय आचरण सम्बन्धी दोषों के कारण गिर जाता है। उन्होंने ही उसकी आत्मिक ज्योति को धुंधला बना रक्खा है और उसमें पूर्ण ज्ञान नहीं होने देते। जब मनुष्य इस धुंधलेपन को दूर कर देता है, तब उसे अपने दोषों का कारण ज्ञात हो जाता है और फिर वह उनके दूर करने में लग जाता है और ज्यों ज्यों उनको दूर करता जाता है त्यों त्यों भलाई और श्रेष्ठता के सोपान पर चढ़ता जाता है और विशुद्ध जीवन में केवल ज्ञान को प्राप्त करके परमात्म पद को प्राप्त कर लेता है।

कभी कभी ऐसा होता है, कि लोग हृदय की विशुद्धता के कारण नहीं किन्तु मित्रों के भय से अथवा लोकाचार वा रीति रिवाज के भय से कुमार्ग में प्रवृत्त मालूम नहीं होते और अपने को समझते हैं कि हम बड़े सदाचारी और सद्गुणी हैं, परन्तु यह उनका भ्रम है। यथार्थ में वे सद्गुणों के विषय में कुछ भी नहीं जानते। इस बात का प्रमाण यही है कि समस्त बाह्य रुकावटों को हटा दो और रीति रिवाज का जो भय उन्हें लगा हुआ है, उसे मिटा दो, फिर देखो उनके सद्गुण कहां जाते हैं। ज़रा से लालच के आने पर उनके दुर्गुण स्वयं प्रगट हो जाते हैं, परन्तु इसके विपरीत जो मनुष्य वास्तव में सद्गुणी होता है, वह प्रायः देखने में तो साधारण मनुष्यों के सदृश ही मालूम होता है, उसमें कोई विशेषण गुण लोगों को दृष्टि गोचर नहीं होता, परंतु यदि कोई असाधारण घटना हो जाए, जिस में उसकी परीक्षा का अवसर आ जाए, अथवा किसी भयंकर

विपत्ति में पड़ जाए, तो उसके गुप्त सद्गुण आप ही सौंदर्य और शक्ति के साथ प्रगट हो जाते हैं।

आत्मिक ज्ञान से बुराई का नाश हो जाता है और भलाई के नियमों का ज्ञान हो जाता है। जिस मनुष्य को पूर्ण आत्मिक ज्ञान हो जाता है वह कभी पाप कार्य नहीं कर सकता, कारण कि वह भलाई और बुराई को अच्छी तरह से जानता है और यह किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है कि मनुष्य भलाई बुराई के फलाफल को भली भांति जानता हो और उनके कार्य कारण के सम्बन्ध को पहिचानता हो फिर भी भलाई का आश्रय न लेकर बुराई की ओर प्रवृत्ति करे।

जिस प्रकार कोई बुद्धिमान पुरुष अनाज को छोड़ कर मिट्टी नहीं खाएगा, उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य सन्मार्ग को त्याग कर कुमार्ग को ग्रहण नहीं कर सकता। पाप का होना अज्ञानता और आत्मभ्रम का चिह्न है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि ज्ञान पर परदा पड़ा हुआ है और मन भलाई बुराई के पहिचानने में असमर्थ है।

भलाई की प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य को बुराई की उन शक्तियों से युद्ध करना पड़ता है जो उसे प्रबल और अजेय मालूम होती हैं; परन्तु ज्यों ज्यों उसका आत्मिक ज्ञान बढ़ता जाता है, त्यों त्यों वह वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को समझता जाता है और उसे बुराई नीच, अधम, तुच्छ और निर्बल प्रतीत होने लगती है। जिस मनुष्य को आत्मिक ज्ञान है, वह इस बात को जानता है कि बुराई की जड़ अज्ञानता है। दुनिया में

जितने भी पाप और दुःख हैं वे सब अज्ञानता के कारण हैं। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष पापियों और पीड़ित मनुष्यों से घृणा नहीं करता किन्तु उन पर दया दृष्टि दिखलाता है।

निःसंदेह वह मनुष्य, जिसने बुराई को जीत लिया है उसके कारणों को समझ लिया है, किसी से भी घृणा या द्वेष नहीं करता। वह दूसरों के दुश्चरित्र को देख कर उनकी आत्मिक दुर्दशा का पता लगाता है जिसके कारण उनकी यह दशा हुई है, और इसी लिए वह उन पर दया, अनुकम्पा और अनुग्रह करता है। यह आत्मिक ज्ञान के ही कारण है। यदि उसमें आत्मिक ज्ञान न होता, तो वह दया करने के स्थान में घृणा और द्वेष करता, कारण कि आत्मिक बोध के साथ प्रीति और शोक के साथ सदा सदैव से रहती है।

वह आत्मिक ज्ञान जो आत्म विशुद्धि और भलाई से उत्पन्न होता है, मनुष्य के चरित्र को परिपक्व कर देता है। उससे मनुष्य में दृढ़ता और माधुर्यता आ जाती है। बुद्धि निर्मल और इच्छा शक्ति दृढ़ हो जाती है, और हृदय पवित्र और विशुद्ध होजाता है जिससे उसका जीवन, ज्ञान, सौंदर्य, माधुर्य और वात्सल्य पूर्ण होता है और वह प्रेम, अनुकम्पा, दया, सहानुभूति और पवित्रता से पूरित रहता है। इस भांति जब कि भलाई से आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति होती है, तो आत्मिक ज्ञान से भलाई भी चिरस्थाई हो जाती है। मन प्रेम और पवित्रता की ओर लग जाता है और मनुष्य के ललाट पर ईश्वरीय छाप लग जाती है।

जिसकी भलाई बाह्य स्थिति के बदलने से नहीं बदलती, चाहे उसके साथियों के भाव उसके प्रति बदल जांय, परन्तु उसके भाव वैसे ही बने रहते हैं, वह मनुष्य निश्चय से ईश्वरीय गुणों को प्राप्त करके सर्वत्र सर्वश्रेष्ठ भलाई को ही देखता है। अब उसके मन से यह विचार ही निकल गया है कि बुराई उसे अथवा किसी को हानि पहुंचा सकती है। अब वह केवल भलाई से ही सम्बन्ध रखता है। इसी कारण वह बुराई की ओर दृष्टि न करके केवल भलाई को ही देखता है। वह देखता है कि लोग भलाई के भ्रम में बुराई करने लगते हैं, इस लिए उसके हृदय में किसी के प्रति द्वेष या घृणा नहीं होती।

चाहे ऐसे मनुष्य की संसार में कुछ भी प्रसिद्धि न हो, परन्तु उसका जीवन बड़ा दृढ़ और सबल है, कारण कि भलाई से बढ़कर संसार में कोई प्रबल शक्ति नहीं है। ऐसा मनुष्य जिस दशा में रहता है और जिस समाज में जन्म लेता है, उसको भारी लाभ पहुँचाता है, चाहे लाभ उसके जीवन काल में प्रतीत न हो। भलाई में ऐसी प्रबल शक्ति है कि संसार का भाग्य सदैव भले मनुष्यों के हाथ में रहा है और रहेगा। भले मनुष्य ही संसार के नेता, पथ प्रदर्शक और उद्धारक रहे हैं। वर्त्तमान काल में भी वे ही महापुरुष संसार को शीघ्रता से अपने मार्ग में ले जा रहे हैं। मेरा यह कथन किसी अलौकिक वा अज्ञात रूप से नहीं है, किंतु व्यवहारिक और वास्तविक रूप से है कि वे लोग अपने आदर्श जीवन और आदर्श कार्यों से संसार को सन्मार्ग पर ले जा रहे हैं। वे महापुरुष जिन्होंने संसार को लाभ पहुँचाया है, कोई अलौकिक वा आश्चर्य

जनक कार्य करने वाले मनुष्य नहीं थे, यद्यपि मूढ़ पुरुषों ने उन्हें ऐसा ही समझा है, किन्तु सदाचारी, धर्मात्मा और परोपकारी जीव थे।

संसार न कभी बुराई के आधीन रहा है और न कभी रहेगा, कारण कि यदि संसार में केवल बुराई ही बुराई पाई जाए, तो फिर संसार का अस्तित्व ही मिट जाए। भलाई क्या है। बुराई के न होने का नाम ही भलाई है। जहां भलाई है वहीं बुराई का प्रभाव है। जहां प्रकाश है वहीं अंधकार का प्रभाव है। प्रकाश के कारण ही संसार का अस्तित्व है अन्यथा संसार क्षण भर में नष्ट होजाए। संसार में सब से निर्बल वस्तु बुराई है और बुरा आदमी किसी कार्य को भी सम्पादन नहीं कर सकता। सृष्टि केवल भलाई को उत्पन्न ही नहीं करती, किन्तु स्वयं भली है। उससे बुराई नष्ट हो जाती है और कुछ भी कार्य नहीं कर सकती।

आत्मिक ज्ञान से मनुष्य सम्पूर्ण पदार्थों को सत्यता के प्रकाश से देखता है, जिस प्रकाश में संपूर्ण पदार्थ स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश संसार के सम्पूर्ण पदार्थों को उनके वास्तविक रूप में प्रकट कर देता है, उसी प्रकार जब सत्य का प्रकाश मस्तिष्क में प्रवेश करता है तो उससे जीवन की समस्त घटनाओं का ठीक ठीक सम्बन्ध ज्ञात हो जाता है। जो मनुष्य सत्य के द्वारा अपने ही हृदय की खोज करता है, वह सबके हृदय का पता लगा लेता है। जिस मनुष्य ने उद्योग करके उस पूर्ण सिद्धान्त को समझ लिया है जो उसके हृदय में काम कर रहा है, उसने उस ईश्वरीय नियम का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया है जो संसार की

उत्पत्ति और स्थिति का कारण है। आत्मिक ज्ञान से सर्व प्रकार की भूल निकल जाती है और मिथ्या विचारों और विश्वासों का अन्त हो जाता है। पाप ही सब से बड़ी भूल है। मनुष्य एक दूसरे के मत और विश्वासों पर आक्षेप किया करते हैं और स्वयं अज्ञानावस्था में पड़े रहते हैं। जब वे स्वयं पापों से मुक्त हो जाएँगे, तब उन्हें ज्ञान की प्राप्ति होगी। मिथ्या विश्वास पाप के द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। अज्ञानता का चश्मा लगाकर मनुष्य सर्वत्र बुराई ही बुराई देखता है। बुराई कुछ भी नहीं है केवल उसकी अज्ञानता वा भ्रम है। वह अपने हृदय के पापमय विचारों के कारण सदैव दुःखी और क्लेशित रहता है। यद्यपि दुःख और क्लेश कुछ भी नहीं हैं। जहां विशुद्ध और निर्मल ज्ञान है, वहां मल का नाम नहीं। भूत, पिशाच, काली, मुंडी, मसान, शैतान, जिन्द, चुड़ैल, आदि सब भ्रम और अज्ञानता के कारण मालूम होते हैं। जहां भ्रम और अज्ञानता का नाश हो जाता है, इनका भी वहीं अन्त हो जाता है और फिर आत्मिक ज्ञान की दृष्टि में संसार सुन्दर, मनोहर, नियमबद्ध और आनन्दप्रद मालूम होने लगता है।

आत्म-ज्ञानी मनुष्य ध्यानस्थ मुनियों की भांति परमानन्द का अनुभव करता है। वह केवल हृदय की साधारण पवित्रता के समय ही उसका अनुभव नहीं करता, किन्तु मन की साधारण अवस्था में भी वह आनन्द में मग्न रहता है। उसने अपने दुःखों और क्लेशों से पूर्ण यात्रा को समाप्त कर लिया है और अब वह शान्ति का उपभोग कर रहा है। उसने अपने काम क्रोधादि शत्रुओं को जय कर लिया है और इसीलिए अब वह आनन्द में है। उसको संसार के पाप, दुःख और क्लेश

अन्य मनुष्यों की अपेक्षा स्पष्ट दिखलाई देते हैं और अब वह उनको उनके कारण, उत्पत्ति, वृद्धि और परिणामों के स्वरूप में देखता है, न कि उस स्वरूप में जिसमें पहिले देखता था जब कि वह उनमें लिप्त था और उसका मन अपवित्रता से कलुषित था। जिस प्रकार माता अपने छोटे से बच्चे को बचपन की असहाय अवस्था में प्रवेश करते हुए देखकर उसे प्रेम और करुणा दृष्टि से देखती है, उसी प्रकार आत्मज्ञानी पुरुष संसार के जीवों को दुःख और संकटमय जीवन और असहाय अवस्था-से निकलते हुए देखकर उनको दया अनुकम्पा और प्रेम भरी दृष्टि से देखता है।

आत्मज्ञानी पुरुष प्रत्येक वस्तु में न्याय का आधिपत्य देखते हैं। जब कि साधारण मनुष्यों को पाप की जय होते देखकर रोश और क्रोध आ जाता है, उसे पाप का पराजय होते ही दिखलाई देता है। वह सर्वत्र सत्य और न्याय का ही साम्राज्य देखता है। यद्यपि वह साधारण मनुष्यों के दृष्टिगोचर नहीं होता, तथापि वह सदैव अटल रहता है। जब वह भलाई को सर्व श्रेष्ठ, अजेय और असीम शक्ति के साथ बुराई की समानता करता है, तो उस समय उसे बुराई एक तुच्छ, निर्बल, और घृणित वस्तु दिखलाई देती है। इस प्रकार जानकर और देख कर उसका मन भलाई में आरूढ़ हो जाता है। वह सत्य का अनन्य भक्त है और उसे भलाई और परोपकार के कार्यों में ही आनन्द आता है।

जब हृदय के ज्ञान चक्षु खुल जाते हैं, तो उसको वास्तविकता का पता लग जाता है। यह वास्तविकता काल्पनिक नहीं होती, और न इस संसार से पृथक ही कोई वस्तु होती है,

किन्तु इसी संसार की होती है और इसी संसार की वस्तुओं से सम्बन्ध रखती है। आत्मज्ञान से पतन विनाश और परिवर्तन पर विजय प्राप्त हो जाती है कारण कि मनुष्य परिवर्तन में स्थिरता, अनित्यता में नित्यता और मृत्यु में अमरत्व देखता है।

यहीं पर संत, महात्मा और आदर्श पुरुषों के आदर्श सच्चरित्र के रहस्यपूर्ण अर्थ निकलते हैं। ये महापुरुष वस्तु की वास्तविकता को देखते हैं, जीवन के महत्व को समझते हैं, सत्यता के नियम को जानते और उसी के अनुसार प्रवृत्ति करते हैं। आत्म विजयी होकर सर्व प्रकार के भ्रमों और विकारों पर जय लाभ करते हैं, पाप पर जय प्राप्त करके दुःख और क्लेशों से मुक्त हो जाते हैं और अपने को पवित्र और विशुद्ध बनाकर सम्पूर्ण संसार में पवित्रता ही पवित्रता देखते हैं।

जो मनुष्य सत्यता, पवित्रता और भलाई को ग्रहण करता है और शोक, दुःख, क्लेश, भ्रम और पराजय के समय में भी उनको नहीं त्यागता, उसे अंत में आत्मज्ञान हो जाता है और संसार में सर्वत्र सत्य का ही साम्राज्य दिखलाई देता है। उसकी दुःखित अवस्था का अंत हो जाता है। नीच वृत्तियाँ का उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता और न वे उसे सता सकती हैं। पवित्रता और प्रसन्नता उसे प्राप्त हो जाती है और संसार सत्यता की विजय से आनंदित होकर, उस विजयी के लिए जय जय कार के शब्द करता है, और अवतार, गुरु और तीर्थंकर आदि पदवियों से उसे अलंकृत करके उसका स्वागत करता है।

---

१. मनुष्य स्वामी है !

आत्म विजय से एक भिन्न प्रकार की चेतना होती है जो आनन्दमय और ज्ञान स्वरूप होती है और जिसे ईश्वरीय चेतना कहना चाहिये। ससारी जीवों की साधारण चेतना और इस ईश्वरीय चेतना में भारी अंतर होता है। सांसारिक चेतना से मनुष्य लोभ, लालच और इन्द्रिय सुखों की तृप्ति के लिए दुःख, शोक और पश्चाताप करता है, परन्तु ईश्वरीय चेतना से परमानन्द का अनुभव करता है। ईश्वरीय चेतना का सम्बन्ध स्वार्थ, माया, इन्द्रिय-सुख और विषय-वासना से नहीं होता, किन्तु मानव समाज से, सम्पूर्ण ब्रह्मांड से, अनन्त गुणों से, तथा ज्ञान और सत्यता से होता है। इस चेतना का मनुष्य स्वार्थ परता से कोसों दूर रहेगा। इससे यह न समझना चाहिए कि जीवन सुख बिलकुल नष्ट हो जाता है। हाँ यह अवश्य है कि उसके लिए चिन्ता और अभिलाषा नहीं रहती। सुख उसके जीवन का उद्देश्य नहीं रहता किन्तु सद्कर्मों में लीन होने के कारण सुख की उसे स्वमेव प्राप्ति हो जाती है। ईश्वरीय चेतना में न किसी प्रकार का पाप है और न किसी प्रकार का दुःख। पाप कैसा, पाप का विचार भी हृदय से निकल जाता है। जीवन की सत्यता और वास्तविकता का बोध हो जाता है और दुःख और शोक के लिए स्थान भी

नहीं रहता। इस चेतना का भिन्न भिन्न महात्माओं ने भिन्न भिन्न नाम रक्खा है। किसी ने इसको किसी नाम से पुकारा है और किसी ने किसी नाम से। बुद्ध भगवान् ने इसे 'निर्वाण' कहा है, ईसा ने 'स्वर्गीय राज', और शंकराचार्य ने 'मुक्ति अथवा मोक्ष' कहा है।

साधारण मानुषी चेतना स्वार्थयुक्त चेतना है। उसमें सिवाय आपे और स्वार्थ के और कुछ नहीं होता। स्वार्थयुक्त आत्मा में अनेकों चिंताएं और भय लगे रहते हैं। स्वार्थ भंग होने से मनुष्य को भारी दुख और संताप होता है। संसार में स्वार्थ की वृद्धि को ही मनुष्य अपना धर्म और कर्तव्य समझे हुए हैं।

ईश्वरीय चेतना में स्वार्थवासना की गन्ध भी नहीं रहती है। स्वार्थ का सर्वथा अभाव हो जाता है। यही कारण है कि ऐसे मनुष्य को तनिक भी दुःख, शोक और चिन्ता नहीं होती। वह वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानता है। उसे इस बात का ख्याल नहीं होता कि यह पदार्थ सुख का कारण है अतएव इस से राग करूँ और यह पदार्थ दुःख का कारण है अतएव इससे घृणा करूं और न वह कभी यही सोचता है कि अमुक वस्तु मेरे सुख के लिए इस प्रकार होती।

स्वार्थ चेतना का मनुष्य इच्छा और वासना के वशीभूत रहता है, परंतु ईश्वरीय चेतना का मनुष्य स्वार्थ और इच्छाओं को अपने वश में रखता है। वह निरन्तर दुःख और सुख का विचार करता रहता है, परन्तु यह बिना दुःख सुख का विचार

किये धर्म और परोपकार में प्रवृत्त रहता है। मानव समाज को स्वार्थ चेतना से ईश्वरीय चेतना की ओर जाना है। स्वार्थ और माया के बन्धन को तोड़ कर जिसमें दुःख और पाप भुगतने पड़ते हैं, स्वतन्त्रता को प्राप्त करना है, जिसमें शक्ति और पवित्रता का समावेश है। बड़े बड़े ऋषि, मुनि और महात्माओं ने पूर्व काल में इस अवस्था को प्राप्त किया है। साधारण चेतना की अवस्था में उन्हें अनेक कष्टों और दुःखों को सहन करना पड़ा है। आत्मविजय प्राप्त करने पर ही ये जीवन मुक्त और ब्रह्म में लीन हुए हैं। इसी जीवन में ये विकाश के उच्चतम शिखर पर पहुंच गए और आवागमन के दुःखों से सदैव के लिए मुक्त हो गए हैं। ये ही वास्तव में जीवन के स्वामी हैं जो आत्म विजय करके ज्ञानी हो गए हैं। इनमें से कुछ तो भगवान् और अवतार करके पूजे जाते हैं कारण कि उन्होंने पूर्ण ज्ञान और विशुद्ध चेतना का परिचय दिया है जो साधारण मनुष्य की चेतना से कहीं बढ़ी हुई है। इसी कारण उनकी चेतना अलौकिक अकथनीय गूढ़ और बुद्धि के बाहर है, तथापि इस चेतना में कोई गुप्त रहस्य नहीं है। स्वार्थ के नाश होने पर वही तुमको स्वच्छ सरल और स्पष्ट ज्ञात होने लगेगी।

जब हम स्वार्थयुक्त चेतना से बड़े बड़े महात्माओं के ज्ञान, नम्रता, क्षमा, शान्ति, धृति आदि गुणों को देखते हैं, तो ये हमें अलौकिक ही दीख पड़ते हैं, परन्तु जब हम उन्हें ईश्वरीय चेतना के द्वारा देखते हैं, तो वे अत्यन्त सरल और स्वाभाविक मालूम होते हैं। स्वार्थ चेतना का मनुष्य उस समय तक ईश्वरीय चेतना को प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक कि वह सम्यक्चारित्र और सदाचार का पूर्ण रूप से पालन नहीं करता।

जितना मनुष्य अपनी कषायों, वासनाओं और मनोविकारों को दूर करेगा, उतना ही उसे दैवी ज्ञान और दैवी बल प्राप्त होगा। जिस मनुष्य ने अपने आपको पूर्ण वश में कर लिया है, आत्म विजय प्राप्त कर ली है, वही वास्तव में सच्चा स्वामी है। वही परमहंस है। सभ्यता, दयालुता और श्रेष्ठता आदि गुण जिनके कारण उनमें अन्य मनुष्यों से विशेषता है, उसके आत्म विजय के प्रति फल हैं और उन युद्धों के परिणाम हैं जो उसने उन मानसिक शक्तियों के समझने और जय करने के लिए किए हैं जिनके दासत्व में साधारण स्वार्थ चेतना का मनुष्य अधा होकर पड़ा रहता है।

स्वार्थी मनुष्य इन्द्रियों का दास बना रहता है। वह अपनी इन्द्रियों की प्रवृत्ति को रोकता नहीं है किन्तु उन्हें स्वतंत्रता से अपना काम करते रहने देता है और उन्हीं के कारण भाँति भाँति के दुःख और कष्ट उठाता है। वह पाप और दुखों का अनुभव करता है और उन्हें बुरा भी समझता है, किन्तु वह उनमें से निकलने का कोई उपाय नहीं देखता, इसी लिए वह अपने मनमें यह कल्पना कर लेता है कि ये दुःख और पाप मेरे भाग्य में ही बदे हैं, इनको मुझे भोगना ही पड़ेगा, परन्तु यह उसकी मूर्खता है। यदि वह उद्योग करे तो उन दुःखों से मुक्त हो सकता है और आपत्तियों से बच सकता है।

जिस मनुष्य को ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हो गया है, वह स्वामी है। वह सत्य पर अटल जमा रहता है। उसके हृदय से स्वार्थ युक्त वासनाएँ सदैव के लिये दूर होगई हैं। वह अपनी मनोवृत्तियों को रोकता है और उन्हें सद्मार्ग पर लगाता है,

जिससे उसे दुःखों और पापों पर विजय प्राप्त हो जाती है, तथा उसे इस बात का ज्ञान होजाता है कि आत्म विजय से ही मनुष्य इन अवस्थाओं से निकल सकता है अन्यथा नहीं। उसे किसी प्रकार के मत मतांतर के सिद्धान्तों की आवश्यक्ता नहीं पड़ती। वह सदा अपने को सद्कर्म में परोपकार में तत्पर रखता है और अपनी दिन प्रति दिन बढ़ती हुई विजय, पवित्रता और शक्ति को देखकर प्रसन्न होता है। जब वह अपने ऊपर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त कर लेता है, तो फिर उसमें सत्यता के अतिरिक्त कोई प्रवृत्ति नहीं रहती वह पाप पर विजय प्राप्त कर लेता है और फिर दुःखों का बंधुवा नहीं रहता।

वही मनुष्य वास्तव में ज्ञानी, शान्त और सुखी है जिसने अपने मनको अपने वश में कर लिया है, अपने ऊपर विजय प्राप्त करली है और अपनी आत्मा में से सर्व प्रकार के विकारों को निकाल दिया है। ऐसे मनुष्य को किसी प्रकार के दुःख नहीं सता सकते। साधारण मनुष्यों की चिन्ताएं और कष्ट उसे नहीं होते और न उस पर किसी प्रकार कोई आपत्ति आती है। ईश्वरीय गुणों के आश्रय में होने से कोई शक्ति उसे नही गिरा सकती और न कोई शत्रु उसे हानि पहुंचा सकता है। दयालु और शान्त होने से कोई शक्ति अथवा कोई व्यक्ति उसके सुख को नही छीन सकता।

स्वार्थ के अतिरिक्त मनुष्य का कोई शत्रु नहीं है। अज्ञानता के सिवाय कोई अन्धकार नहीं है और कषायों और वासनाओं के सिवाय कोई दुःख देने वाला नहीं है।

वह मनुष्य यथार्थ में ज्ञानी नहीं है जिसमें इच्छा,अनिच्छा शोक, अभिलापा, आकांक्षा और निराशा पाई जाती हैं। स्वार्थी मनुष्य में ही ये सब बातें पाई जाती हैं और मूर्खता, निर्बलता और पराधीनता को द्योतक हैं।

वही मनुष्य यथार्थ में ज्ञानी है जो संसार के कार्य करता हुआ भी सदा शान्त, गम्भीर, नम्र और सन्तोषी है। जो वस्तुओं को उनके यथार्थ स्वरूप में मानता है और जो दुःख, शोक, निराशा और अभिलापा से अलग रहता है। ये गुण उसी मनुष्य में पाए जाते हैं जिसे ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हो गया है और जो सत्यता के राज्य में विचरता है। ये मनुष्य के बल, विजय और ज्ञान के द्योतक हैं।

जिस मनुष्य को धन, सम्पदा, मान बड़ाई और सुखों की इच्छा नही है, किन्तु जो कुछ उसके पास है, जो उसी में प्रसन्न रहता है और उसके छिन जाने पर शोक नही करता, वही वास्तव में ज्ञानी पुरुप है, परन्तु जिसे धन, सम्पदा, मान बड़ाई और सुखों की अभिलापा है, जिसे जो कुछ उसके पास है उस पर सन्तोप नहीं है, और उनके छिन जाने पर जिसे दुःख और क्लेश होता है, वही यथार्थ में मूर्ख और अज्ञानी है।

मनुष्य विजय के लिये ही उत्पन्न किया गया है, परन्तु देश देशान्तरों पर विजय प्राप्त करने से कुछ लाभ नहीं हो सकता। मनुष्य को अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त करना चाहिये। देश देशान्तरों पर विजय प्राप्त करने से मनुष्य थोड़े समय के लिये ही सासक होता है, परन्तु आत्मा पर विजय प्राप्त करने से वह सदैव के लिये सासक बन जाता है।
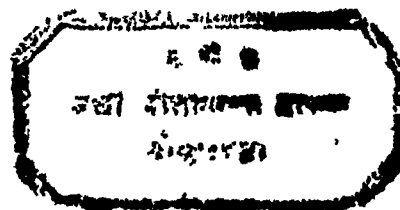
मनुष्य अवश्य स्वामी बनने के लिये है, किन्तु बल पूर्वक अपने भाइयों का स्वामी बनने के लिये नहीं है, किन्तु आत्म-संयम के द्वारा अपना स्वामी बनने के लिए है। बलपूर्वक अपने भाइयों पर विजय प्राप्त करना गर्व और अहंकार सूचक है, परन्तु आत्म सयम द्वारा अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त करना नम्रता का चिन्ह है।

वही मनुष्य अपना स्वामी आप है जिसने सत्यता के लिए स्वार्थ का बिलकुल त्याग कर दिया है और जो नित्य सत्य पर स्थिर हैं। ऐसा मनुष्य केवल मनुष्यत्व से विभूषित नहीं होता किन्तु ईश्वरीय गुण और ज्ञान से भी विभूषित होता है। उसके मन से मानसिक विकार दूर होजाते हैं और उसे जीवन में फिर किसी बात का भय नही रहता और उसे सब अवस्थाओं का ज्ञान होजाता है और वह सदा परिस्थितियों से उच्च रहता है। वह सांसारिक घटनाओं के हाथ का कठ-पुतला नहीं रहता, किन्तु उन्हें साम्यभाव से देखता है। अब वह पापी, दुःखी चिन्तित और क्लेशित मनुष्य नहीं रहा, किन्तु शुद्ध बुद्ध चेतन हो गया है और जीवन मरण के दुःखों से मुक्त होगया है तथा अनन्त और अविनाशी सुख में लीन होगया है। अब उसे संसार की सम्पूर्ण वस्तुएं हस्त रेखा के समान स्पष्ट दिखाई देती हैं और उसमें और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रहा है।

१०—ज्ञान और विजय ।

विजयी जीवन का प्रारम्भ विश्वास से होता है परन्तु उसकी पूर्ती पूर्ण ज्ञान से होती है। विश्वास मार्ग प्रदर्शक है, परतु ज्ञान अन्तिम ध्येय है। विश्वास के कारण अनेक दुःखों और आपत्तियों का सामना करना पड़ता है, परन्तु ज्ञान इन सब आपत्तियों से मुक्त होता है विश्वास सहन करता है, परन्तु ज्ञान प्रेम करता है। विश्वास को अधेरे मार्गों में से होकर चलना पड़ता है और आशा करता है, परन्तु ज्ञान प्रकाश में अपना कार्य करता है और जानता है। विश्वास उद्योग करता है किंतु ज्ञान उद्योग को सफल करता है। विश्वास से मनुष्य एक वस्तु की अभिलाषा करता है, परन्तु ज्ञान में उसे प्राप्त कर लेता है। विश्वास यात्री को सहारा देने वाली लष्टिका है, परन्तु ज्ञान उसकी यात्रा का अभीष्ट स्थान है। बिना विश्वास के ज्ञान नहीं हो सकता, परन्तु जब ज्ञान प्राप्त हो-जाता है तब विश्वास का कार्य समाप्त होजाता है।

ज्ञानमय जीवन ही विजयी जीवन है। यहाँ पर ज्ञान से अभिप्राय पाठ्य पुस्तकों के ज्ञान से नही है, किंतु जीवन के गुप्त रहस्यों के ज्ञान से है। कुछ इधर उधर की वाह्य बातों के

कंठस्थ कर लेने का नाम ज्ञान नहीं है, किंतु जीवन की गुप्त और गूढ़ बातों के जानने और समझने का नाम ज्ञान है। जब तक मनुष्य इस ज्ञान को प्राप्त नही कर लेता, वह विजयी नहीं होसकता, न उसके दुःखित हृदय को शान्ति मिल सकती है और न वह कही विश्राम ले सकता है। मूर्ख मनुष्य को मुक्ति प्राप्त करने का केवल एक यही मार्ग है कि ज्ञानोपार्जन करके बुद्धिमान बन। पापी मनुष्य भी उस समय तक मुक्ति नही पा सकते, जब तक कि वे अपने हृदय को विशुद्ध और पवित्र न कर लें। जब तक निर्दोष और निष्कपट रीति से ज्ञान प्राप्त नहीं किया जाता, तब तक मनुष्य अपने दुःखों और क्लेशों से छुटकारा नहीं पा सकता। जब तक मन में पूर्ण ज्ञान का प्रकाश नही हो जाता तब तक स्थाई शान्ति नहीं मिल सकती। विशुद्ध जीवन और ज्ञानी हृदय एक ही बात है।

मूर्ख मनुष्य के लिए भी मुक्ति का द्वार खुला है कारण कि वह ज्ञान प्राप्त कर सकता है। परमात्मा के लिए भी मुक्ति है, कारण कि पवित्रता प्राप्त की जा सकती है। चाहे मनुष्य धनवान् हो चाहे निर्धन, चाहे विद्वान् हो, चाहे मूर्ख, यदि वह चाहे तो जीवन के जंजालों से छूट सकता है और निर्दोष जीवन व्यतीत कर सकता है। जब मनुष्य दासत्व के बंधन से मुक्त हो सकता है और विजय प्राप्त कर सकता है तो यह बात स्पष्ट है कि उच्च और उत्कृत स्थानों में आनन्द और सुख है और संसार सुखमय है।

जब ज्ञानी मनुप्य अपने ऊपर विजय प्राप्त कर लेता है, तो उसको पाप, बुराई और दुःखों पर स्वयमेव विजय प्राप्त-

हो जाती है और दुःखों और पापों से निर्मुक्त होकर वह शान्ति और पवित्रता की प्रति मूर्ति बन जाती है। बुराई के राज्य से निकल कर उस नवीन संसार में प्रवेश कर लेता है जहाँ पर विशुद्ध प्रेम और निर्दोष न्याय का साम्राज्य है और बुराई का सर्वथा अभाव है और जहाँ पर वह सत्यता की नित्यता से अमर हो जाता है।

ज्ञानी मनुष्य के राज्य में चिंता और भय, शोक और क्लेश, निराशा और पश्चात्ताप, पाप और दुष्टता का नाम भी नहीं होता। ये तो स्वार्थ जगत् की काल्पनिक वस्तुएं हैं। ज्ञान के प्रकाश में ये क्षण मात्र भी ठहर नहीं सकतीं। इनमें वास्तविकता छूकर भी नहीं हैं। जीवन के दुःख मनकी उन अंधकार युक्त अवस्थाओं से उत्पन्न होते हैं जिन पर अभी तक ज्ञान सूर्य का प्रकाश भी नहीं पड़ा है। वे स्वार्थ के साथ उसी प्रकार लगे रहते हैं, जिस प्रकार छाया वस्तु के साथ रहती है।

जहां स्वार्थ होता है वही उनका अस्तित्व पाया जाता है। जहां पाप है वही वे देखने में आते हैं। स्वार्थ में कहीं सुख नहीं और न उसमें कुछ प्रकाश है। जहाँ काम क्रोधादि कषायों की प्रचंड ज्वालाएं उठती हैं और कुत्सित इच्छाओं और वासनाओं की अग्नि दहकती है वहां पर ज्ञान और शांति की मन्द सुगंधि और शीतल पवन कैसे बह सकती है ?

आनन्द और कुशलता, सुख और शांति, धैर्य और संतोष ये सब ज्ञानी पुरुष की स्थिर सम्पत्ति हैं जिनको उसने

आत्म संयम के द्वारा प्राप्त किया है और जो भलाई और निर्दोष जीवन के स्वाभाविक फल हैं।

सच्चे जीवन का सार ज्ञान है और ज्ञान का सार शान्ति है। जीवन की प्रत्येक अवस्था में विजय प्राप्त करना उसकी वास्तविकता को जानना है। जीवन विजय का अर्थ ही यह है कि जीवन के प्रत्येक कार्य मे शांति रखना, न कि ज़रा ज़रा सी बातों में घबड़ा जाना और अपने मन को दुःखी करना।

जिस प्रकार समझदार विद्यार्थी पाठ के याद न होने से अथवा काम के पूरा न होने से निराश और दुःखो नहीं होता उसी प्रकार जिस मनुष्य ने भलाई के पाठ को भली भांति सीख लिया है, जो विद्वान् और बुद्धिमान है, उसे अब बुराई या मूर्खता के कारण दुःखो नही होना पडता। वह शोक और पश्चात्ताप से सदैव के लिये मुक्त होगया है।

चतुर विद्यार्थी को अपनी योग्यता के विषय में भय और आशंका नही रहती। उसने अपनी मूर्खता को दूर कर दिया है और ज्ञान प्राप्त कर लिया है। वह भी इस बात को जान गया है कि मैंने ज्ञानोपार्जन कर लिया है, कारण कि उसे कितनी ही बार परीक्षाएं देनी पडी हैं और उन में वह कठिन से कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया है। अब उसे अपनी योग्यता का परिचय देने में तनिक भी भय नहीं होता है। वह कठिन से कठिन परीक्षा दे सकता है और उसमें सफलता प्राप्त कर सकता है। उसे इस बात में तनिक भी

भय नहीं होता, किन्तु हर्ष और आनन्द होता है। वह योग्य बन गया है। उसे अपने ऊपर विश्वास हो गया है और वह सदैव प्रसन्न रहता है।

इसी प्रकार सत्कर्मी और धर्मात्मा मनुष्य को अपने भाग्य के विषय में तनिक भी भय और शङ्का नहीं होती। उसने अपने हृदय के मैलेपन को बिलकुल धो डाला है और उसको विशुद्ध बना लिया है और उसने ज्ञान प्राप्त कर लिया है। जहां पहले दूसरे लोगों के दूषित आचरण से उसको परीक्षा होती थी और वह असफल और अनुत्तीर्ण रहता था, वहां अब निंदा और दोषारोपण के कठिनतर समय में भी वह अपनी शांति और धर्म को हाथ से नहीं जाने देता।

ईश्वरीय ज्ञान की जय और महिमा इसी में है कि सत् और असत् कार्यों की प्रकृति को जानकर सत्कर्मी ज्ञानी मनुष्य दूसरों के दुष्कृतियों से दुखी नहीं होते। नीच और अधम पुरुषों के दुष्कृत्य उन्हें क्लेशित नहीं कर सकते और न उनकी शांति का ही भङ्ग कर सकते हैं। भलाई का आश्रय लेने से न बुराई की उस तक पहुंच ही सकती है और न बुराई उसे बाधा पहुंचा सकती है। वह बुराई के बदले भलाई करता है और बुराई की निर्बलता पर भलाई के बल से विजय प्राप्त करता है। जो मनुष्य दुष्कृत्यों में लगा रहता है वह समझता है कि दूसरे मनुष्यों के दुष्कृत्य अधिक बलवान् हैं और वे मुझे हानि पहुंचा सकते हैं। इसी चिंता में वह सदैव लगा रहता है और शोक सागर में गोते लगाया करता है,

किन्तु उन्हें अपने दुष्कर्मों का परिणाम नहीं समझता। वह दूसरों के बुरे कर्मों को ही अपने दुख का कारण समझता है। अज्ञानता के कारण न उसमें आत्मिक बल होता है और न उसे सुख और शांति ही मिल सकती है।

जिस मनुष्य ने आत्म विजय कर लिया है, यथार्थ में वही दृष्टा है। परन्तु वह भूत प्रेतों का दृष्टा नहीं और न किसी अलौकिक वस्तु का ही दृष्टा है, कारण कि ये चीज़ें क्षणिक और मायावी हैं। वह जीवन की वास्तविक घटनाओं का दर्शक है और उनको सांसारिक और पारमार्थिक दोनों दृष्टियों से देखता है। वह आत्मिक जगत का दृष्टा है, प्राकृतिक विषय का दृष्टा है, ईश्वरीय प्रेम का दृष्टा है और ब्रह्माण्ड में स्वातन्त्र्य का दृष्टा है।

ज्ञानी और विजयी मनुष्य जिसने स्वार्थ के दुखदाई स्वप्नों को देखना बन्द कर दिया है, वह सचेत होकर नवीन चक्षुओं से नवीन संसार में प्रवेश करता है जहां पर पूर्ण आनन्द और शांति का निष्कंटक राज्य है। वह नित्य को देखता है और उसे पूर्ण प्रेम और अनन्त सुख प्राप्त है। उसने अपने को सम्पूर्ण कुत्सित इच्छाओं, संकीर्ण उद्देश्यों, राग और द्वेष से इतना ऊंचा उठा लिया है कि वहां तक उनकी पहुंच ही नहीं। अपनी इस उच्चावस्था के कारण वह वस्तुओं में प्राकृतिक नियम को कार्यरूप में परिणत होते हुए देखता है और यदि कभी स्वयं उसके चक्र में आ पड़ता है तो जन साधारण की भांति दुःखी नहीं होता। वह दुःख

रूपी संसार से परे होगया है, इस लिये नहीं कि वह निर्दयी और कठोर बन गया है, किंतु इसलिये कि वह उस प्रेम में मग्न होगया है, कि जहां स्वार्थ का प्रवेश भी नहीं। अब स्वार्थ उसका कुछ नही कर सकता। दूसरों की भलाई करना ही अब एक मात्र उसका उद्देश्य है। उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं, कारण कि वह स्वार्थ रहित है। वह शांत और गम्भीर है कारण कि वह जानता है कि जो कुछ उसके पास है वह अच्छा है और जो कुछ उसके पास से चला गया है उसमें भी अच्छा ही है। वह हरेक हालत में सुखी है। उसने दुःख को प्रेम में परिवर्तित कर दिया है और इसीलिये उसमें अत्यन्त नम्रता और करुणा आ गई है। उसकी शक्ति प्रचण्ड कुमार्गगामिनी और सांसारिक नहीं है, किंतु दृढ़, पवित्र और ईश्वरीय है। उसमें एक प्रकार की गुप्त शक्ति कार्य करती है जिसके बल से वह जानता है कि संसार के उपकार के लिये पर नम्र होना चाहिये और कहां पर दृढ़ रहना चाहिये। यद्यपि वह शिक्षक है किंतु मितभाषी है। वह स्वामी है किंतु दूसरों पर शासन करने की उसमें इच्छा नहीं है। वह विजयी है किंतु अपने भाइयों को जीतने और दबाने की इच्छा नही रखता। वह सृष्टि नियम को चलाने के लिये एक जीता जागता शस्त्र है और मनुष्य जाति के विकाश की उद्दीप्त और चैतन्य शक्ति है।

इस नये युग के आरम्भ में सतयुग की आदि में फिर एक बार संसार को यह शुभ समाचार सुनादो कि पापियों के लिये पवित्रता है, दुखियों के लिये विश्राम है, निराशों के

लिये आशा है, और पराजितों के लिये विजय लक्ष्मी है। ऐ मनुष्यो! यद्यपि तुम्हारा मन पाप से कलुषित होरहा है, और कुत्सित इच्छाएं तुम्हें दुख दे रही हैं तो भी तुम्हारे हृदय में बल का स्थान है, शक्ति का दुर्ग है और तुम उच्चतम भलाई के निवास स्थान हो। विजय लक्ष्मी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। तुम्हारी चैतन्यता की गहराई में तुम्हारा राज तुम्हारी बाट जो रहा है। इसलिये दुखित आत्माओ, उठो! और अपने राज सिंहासन पर आरूढ़ हो जाओ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

" ज्योतिष प्रवेशिका " के बारे में—

विद्वानों की कुछ सम्मतियां।

श्री० काशीनाथ शास्त्री विद्यानिधि हरिद्वार से लिखते हैं:—

"मैंने ज्योतिष प्रवेशिका आद्योपान्त देखी। वस्तुतः आपका कार्य प्रशंसनीय है जिसके लिए ज्योतिष प्रेमी आपको धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकते।"

श्री पं० लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी सारंगपुरः—

This is a best book on the subject.

श्री० पं० श्रीराम बाजपेई स्काउट कमिश्नर, सेवा समिति कार्यालय, प्रयागः—

From the first few pages which I have been able to go through so far, I consider your work very admirable which will bring the elementry knowledge of Astronomy within grasp of persons with limited knowledge like myself.

श्री० पं० रामचन्द्र शर्मा बी० ए० सम्पादक महारथी देहलीः—

I think it will help a good deal in imparting to Scouts an elementry knowledge of Astronomy. We badly needed a book on the subject in Hindi. Really you deserve the indebtedness of the Hindi knowing public.

हितैषी (मासिक पत्र) की सम्मतिः—

" यह छोटी सी पुस्तक विद्वता के साथ लिखी गई है और प्रत्येक विषय भले प्रकार समझाया गया है। विद्वान् और हिन्दी के प्रेमी लेखक द्वारा ऐसी पुस्तक का लिखा जाना वास्तव में हिन्दी भाषा का गौरव है। पुस्तक संग्रहणीय है "

जैनसमाज के सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक ' जैनमित्र ' की सम्मतिः—

"४-५ वर्ष परिश्रम पूर्वक मनन कर यह पुस्तक इसलिए रची गई है कि हिन्दी जानने वालों को बड़ी सुगमता से ज्योतिष का ज्ञान हो जावे। हर एक विद्यालय में पुस्तक का पठन पाठन होना चाहिये।"

Education writes:—" The object of this admirable book in Hindi is to expound to intelligent readers, previously unfamiliar with the subject, the most significant elements of astronomy. The author has departed from ...

traditional treatment of the subject and has written his book on modern lines. Much of what is written, is based on his personal observation and is accompanied by accurate and appropriate illustrations. He deals very efficiently with the calculation of time as well as the relative position of stars and planets. The composition of Janmapatra has not been lost sight of, while the chapter on the variation of the time of different cities from the standard time will be of special value to our Geography teachers. We welcome this very able, authoritative and up-to-date contribution to astronomy and strongly recommend it to teachers of Science, Geography and scouting. The Nakshatrapatra will be found to be especially instructive and interesting by Geography teachers."